मन्दिर

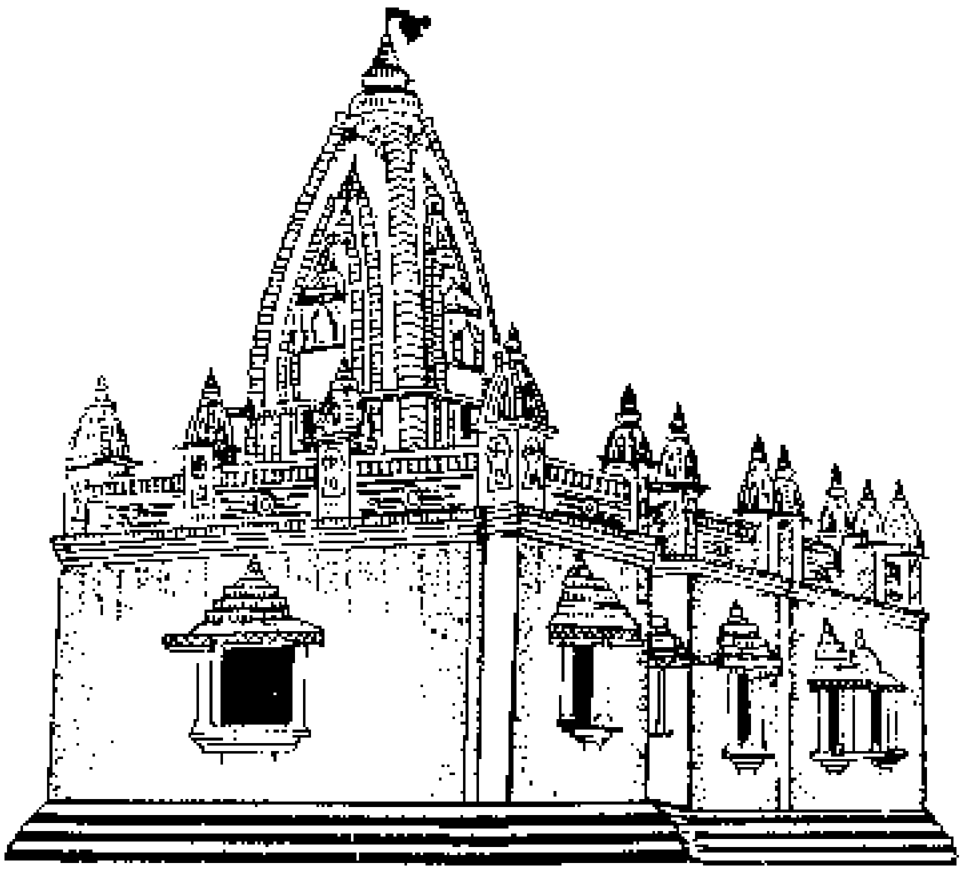

शीश नवाँ अरहन्त को, सिद्धन करूँ प्रणाम ।
आचार्य-उपाध्याय का, ले सुखकारी नाम ।।

सर्वसाधु और सरस्वती, जिन मंदिर सुखकार।
चौबीसों भगवान को, नमो नमूँ शत् बार।।

युवा मुनि अमित सागर जी

विषयानुक्रमांक

विषय	पृष्ठ संख्या
हमारी भावना (प्रकाशक)	IV
परमागम स्तुति	V
कृति का कृत्य	VI
आपकी समस्यायें और उनके समाधान	IX
हमारी कामना	X
संस्कार से संस्कृति	११
ब्रह्म बेला का महत्त्व	१८
मंदिर जी जाने से पूर्व क्या करें?	२०
मंदिर जी आते समय क्या करें?	२६
देव-दर्शन-स्तोत्र	२८
स्तुति	२९
मंदिर जी प्रवेश विधि	२९
रोग नाशक है शंखध्वनि	३०
चत्तारि दण्डक	३२
गंधोदक का महत्त्व	३५
तिलक क्यों?	३७
परिक्रमा क्यों?	३८
भोगों के भिखारी	३९
प्रशस्तिकरण	४०
चिन्हकरण	४२
जिन बिम्बोपदेश	४३
शिखर गुम्बज	५०
स्वाध्याय	५४
माला क्यों ?	६६
सत्संगति क्यों ?	७१
आगम सिद्धान्त	७९

परमागम-स्तुति

शारद! शरद-सी शीतल, शुभ वाणी दे दो मुझे,
आपके द्वारे हम, भिक्षा लेने आये हैं।
ज्ञान का प्रकाश करो, मोहतम नाश करो,
कण्ठ में विराजो मेरे, दीक्षा लेने आये हैं।
आपकी चतुर्भुज, चार अनुयोग धरें।
ज्ञान-हंस रूप भेद-विज्ञान धारे हैं।
ऐसी जिनवाणी मेरी-आत्मा सुधार करे,
जिनके "अमित" बार चरण पखारे हैं।।१।।

मात जिनवाणी तेरी-स्तुति है बार-बार,
तार-तार हुई मेरी-चुंदरी सम्हार दे!
आगम के शब्द-शब्द में, हे मात! दर्श तेरा,
वही दर्श आज निज-पूत पे निशार दे!
यूँ तो मेरा जीवन ही, वाहन तुम्हारा मात!
प्यार दे! निहार दे! दुलार-पुचकार दे!
हंसवाहिनी मैं तेरी-गोद में पड़ा हुआ हूँ,
भाव को सुबोध दे, निखार दे माँ शारदे!।।२।।

शारदे! नमस्कार, करता हूँ बार-बार,
दीजिये समयसार, साथ में नियमसार।
ज्ञान का रयणसार, दे दो प्रवचनसार,
आत्मा का हो सुधार, करो मन में उजार।
परम-पदारथ सार, दे दो पंचास्तिकाय,
पाऊँ मैं भी बोध ऐसा, रक्षा करूँ षड् निकाय।
ज्ञान निधि ऐसी पाऊँ, मन होवे निर्विकार,
"अमित" नमस्कार, करता हूँ बार-बार।।३।।

कृति का कृत्य

'मंदिर' प्रवचन-**पुस्तक** की वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक, धार्मिक-आगमिक-व्यावहारिक व्याख्यायें, आपके जीवन के उलझे हुए प्राथमिक धर्म पहलूओं पर प्रकाश डालती है, क्योंकि हमें धर्म को कहीं खोजना नहीं है। धर्म तो अनादि काल से स्वयं सिद्ध **'खोजा' हुआ है**। लेकिन हमारे योग-उपयोग से **खोया** हुआ है। अतः **हमें धर्म को 'सर्च' नहीं करनी है 'रिसर्च' करनी है**। यानि जो धर्म हमारे योग-उपयोग से विस्मृत हो चुका है, उसे ही हमें खोजना है। खोजने का पुरुषार्थ आप करें तो आपका स्वागत है अन्यथा मन्दिर-प्रवचन कृति ने आपके खोजने की प्रक्रिया भी आपके सामने रख दी है। **अब तो मात्र आपको अपने जीवन में प्रयोग करना है, अनुभूतियों से गुजरना है, क्योंकि आप जब मन्दिर आयें तो आपको बिल्कुल मन्दिर जैसी ही पवित्र अनुभूति हो। मन्दिर हमारे अन्दर अवतरित हो जाये।** जैसे- हम मिठाई खाते हैं तो मिठाई की मीठी अनुभूति के साथ ही हम झूमने लगते हैं।

'मन्दिर' प्रवचन कृति में प्रत्येक स्तर के व्यक्तियों की शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न किया गया है, अतः इस कृति को किसी पंथ-सम्प्रदाय से अनुबंधित नहीं करना। **यदि आपके मन में किसी पंथ-सम्प्रदाय-आम्नाय का आग्रह-दुराग्रह है तो कृपया आपके लिये यह कृति बिल्कुल अनावश्यक है, आप इसे न पढ़ें।**

यदि आप पंथ-आम्नाय का दुराग्रह एक तरफ रखकर पढ़ेंगे-सुनेंगे तो आप अवश्य ही धर्म की जीवन्त अनुभूति कर सकेंगे। क्योंकि **"धर्म एक जीवन्त अनुभूति है" और धर्मशास्त्र, अनुभूति के प्रतिबिम्ब है। "वास्तविक धर्म वह है जो हमारी अनुभूति से होकर गुजरे।" हमें अपने होने का अहसास कराये। हमारे अपने अस्तित्व का बोध प्रदान करे।** जब हमारी विशुद्ध अनुभूति, आगम-शास्त्रों से मिलती है तो समझ लेना कि हम धर्म को उपलब्ध हो गये। आगम, अनुभव की कसौटी है। अनुभव रूपी कसौटी पर अनुभूति रूपी स्वर्ण को कसकर परखा जाता है।

अतः इस कृति में किसी पंथ-सम्प्रदाय-आम्नाय का आग्रह है ही नहीं। फिर भी देश काल में प्रचलित मान्यताओं का विवेचन जरूरी है। लेकिन किसी मान्यता के साथ कोई आग्रह नहीं है। फिर भी हमारा कहना है कि धर्म का कभी सरलीकरण नहीं होता है, क्योंकि धर्म तो स्वयं में सरल है। धर्म एक ऐसा साँचा/ढाँचा है जो हर युग के व्यक्ति के लिये बराबर है। फिर भी धर्म के साधनों का सरलीकरण करना यानि अपने और दूसरों के प्रमाद-आलस्य को बढ़ाना है। **"अपनी सहुलियत के लिये धर्म में किया गया सुधार ही पंथ या सम्प्रदाय बन जाता है।"**

धर्म का मूल्य, अमूल्य है, हमेशा एक रूप ही रहता है, अन्य वस्तुओं के मूल्य की तरह घटता-बढ़ता नहीं है।

एक कुशल दुकानदार के पास मनोविज्ञान होता है, वह जानता है कि ग्राहक क्या चाहता है? और एक अकुशल दुकानदार जो उसके पास है, उसे बेचने का, ग्राहक से खरीदने का विशेष आग्रह करता है। ठीक वैसे ही एक कुशल वक्ता की बात है कि श्रोता क्या चाहता है? श्रोता के ज्ञानानुसार प्रवचन सामग्री जुटाना-सुनाना एक कुशल वक्ता का लक्षण है। लेकिन एक अकुशल वक्ता को जो उसे आता है, उसे ही बोलने का, श्रोताओं को सुनाने का आग्रह होता है।

वर्तमान भौतिक युग के व्यस्ततम समय में आपकी चेतना धर्म से कैसी जुड़ी रहे, इस मनोविज्ञान के साथ ही कुछ नियमों-उपनियमों की परिचर्चा हमें करनी है। क्योंकि जो कभी मन्दिर जी नहीं जाते हैं समयाभाव के कारण उनमें भी मन्दिर जाने की ललक जगे और जो जाते हैं, उनमे दृढ़ता बढ़े!

आप पुस्तक को पढ़कर-देखकर घबड़ायें नहीं। आप आठ दिन तक थोड़ा-थोड़ा करके, पुनः - पुनः मात्र एक ही प्रवचन पढ़ें। प्रवचन पढ़कर अनुभव करें कि हमें अभी तक घर से निकलकर मन्दिर जी आने तक की कितनी जानकारी थी और कितनी नहीं? आप पूरी पुस्तक एक साथ पढ़ने से घबड़ा सकते हैं कि इतनी सारी बातें कौन ध्यान रखे? बड़ा झंझट है। अतः आप आठ दिन में मात्र एक ही प्रवचन बार-बार पढ़ें, जिससे आपके संस्कारों में मन्दिर की हर क्रिया का चिन्तन-भाव पूर्ण ढंग से उतर आयेगा। पुनः आठ दिन बाद इस पढ़ी हुई विधि को प्रयोग में लायें। प्रथम प्रयोग विधि को प्रारम्भ करते ही दूसरा प्रवचन पढ़ना शुरू करें। इसी प्रकार आठ दिन पढ़ना फिर उसका प्रयोग करना। इस तरह लगभग पैंतालिस दिनों में आप एक नई प्रयोग विधि से मन्दिर जी में आना सीख जायेंगे। इन्हीं दिनों में आप णमोकार मंत्र, चत्तारि दण्डक आदि को अर्थ सहित याद करते हुए पुस्तक के अलावा कुछ स्तुति, स्तोत्र पाठ आदि मौखिक याद कर लें। मन्दिर जी सामग्री ले जाने के लिए एक-एक डिब्बी परिवार के हर सदस्य को दे दीजिए। डिब्बी में उतनी ही सामग्री रखें जितनी उस दिन आपको मन्दिर जी में चढ़ानी है। इससे आपका प्रमाद छूटेगा एवं शुभ संकल्प की तरफ आपका ध्यान भी रहेगा।

इस 'मन्दिर' पुस्तक की अभी तक आठ संस्करणों में लगभग दस हजार प्रतियाँ छप चुकीं हैं। अब नवमीं संस्करण से विशेष चिन्तनपूर्ण प्रवचनों की श्रृंखला के साथ निकल रही है। इस कृति को व्यवस्थित संस्करण में तैयार करने के लिये यानि कैसेट से प्रवचन सुनकर, पृष्ठों पर उतारने का दुरुह कार्य सुश्री दीप्ति(शालु) जैन, सरकुलर रोड, फिरोजाबाद (उ.प्र.) एवं सन्दीप कुमार जैन, नया शहर इटावा (उ. प्र.) ने बड़ी लगन और मेहनत से किया है। दोनों श्रद्धालु

अनन्त आशीर्वाद के पात्र हैं।

इस प्रवचन पुस्तक 'मन्दिर' का प्रभाव भौतिकता में भटके हुये युवक/युवतियों पर अवश्य हुआ है और आगे भी होगा। इसी उद्देश्य को लेकर इस मन्दिर पुस्तक का प्रचार प्रसार हो। अत: इस मन्दिर पुस्तक के अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, एवं मराठी में अनुवाद भी शीघ्र तैयार हैं जिससे हर देश-प्रान्त के व्यक्ति इस व्यवहारिक ज्ञान से लाभान्वित हो सकें।

जिन्होंने इस कृति के प्रकाशन का भार वहन किया वे सभी शुभाशीष के पात्र हैं।

इस पुस्तक की लेजर टाईप सेटिंग - पवन कुमार जैन (गदिया) इण्डिया हाऊस, ब्लॉक-ए, तीसरा तल्ला, ६९ गणेशचन्द्र ऐवन्यू, कलकत्ता-१३ द्वारा बड़ी लगन से सुरेश कुमार झांझरी, झुमरीतिलैया (कोडरमा) बिहार के सहयोग से किया गया। दोनों ही शुभाशीष के पात्र हैं।

इसी के साथ सभी संस्करणों को प्रकाशित कराने वाले महानुभाव एवं इस पुस्तक का आवरण अर्चित जैन सुपुत्र विजेन्द्रचन्द जैन, नई दिल्ली तथा प्रकाशक एवं मुद्रक चन्द्रा कापी हाऊस, हॉस्पिटल रोड, आगरा (उ. प्र.) सभी शुभाशीष के पात्र हैं।

ॐ नम:

सम्मेदाचल-मधुवन जिला-गिरिडीह (बिहार)

पावन-अवसर

परम पूज्य वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के परम शिष्य पट्टाचार्य, प्रशान्त मूर्ति, मर्यादा शिष्योत्तम १०८ श्री भरत सागर जी महाराज की स्वर्ण जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में अनेकान्त विद्वत परिषद की ओर से विविध प्रकार के पचास आगमिक सह व्यवहारिक ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है।

इसी श्रृंखला में पुष्प संख्या २२ में "मन्दिर" पुस्तक की ५०,००० प्रतियाँ हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, मराठी, गुजराती भाषा के अनुवाद में प्रकाशित करने का लक्ष्य है, जिससे देश-विदेश के प्रत्येक मन्दिरों-घरों में इस पुस्तक से "मन्दिर" के विषय में सही जानकारी मिल सके। इस पुनीत कार्य में आपके सहयोग की आवश्यकता है जिससे मन्दिर पुस्तक घर-घर पहुँच सके।

बसंत पंचमी — *ब्र० प्रभा पाटनी,* B.A.L.L.B.

१-२-९८ — *संघस्थ आचार्य श्री भरत सागर जी महाराज*

मधुवन, शिखर जी (जि० गिरिडीह) बिहार

आपकी समस्यायें और उनके समाधान

१. यदि आपके घर से मन्दिर जी पास है तो सुबह-शाम(रात्रि) में दोनों समय मन्दिर जी परिवार सहित जाइये एवं सुबह के समय दर्शन-अभिषेक-पूजन, शाम को आरती-भजन-स्वाध्याय-पाठ आदि कीजिए।

२. यदि आपके घर से मन्दिर जी लगभग एक कि. मी. है तो प्रतिदिन प्रातःकाल ही स्नानादि करके यथायोग्य सामग्री लेकर परिवार सहित ही जायें।

३. यदि आपके घर से मन्दिर जी दो कि. मी. या इससे अधिक है एवं स्कूल, कॉलेज, दुकान, ऑफिस आदि के रास्ते में पड़ता हो और आपका स्वयं का वाहन-गाड़ी, स्कूटर, मोटर साइकिल है तो उसे रोककर या किराये के वाहन को रोककर या छोड़कर मंदिर जी में दर्शन करने जरूर जाना चाहिए।

४. यदि आपके घर से मन्दिर जी ५ से १० कि. मी. दूर है तो सप्ताह में छुट्टी के दिन सपरिवार अवश्य मन्दिर जी जाना चाहिए।

५. मन्दिर जी जाने के साथ-साथ ही प्रतिदिन अपने घर में रात्रि को सामूहिक णमोकार मन्त्र, मेरी भावना, छहढाला, आलोचना पाठ आदि को जरूर पढ़ना चाहिए इससे मानसिक शान्ति तो मिलती ही है, और इसी के साथ घर का पर्यावरण भी परिशुद्ध होता है।

६. घर में स्वाध्याय करने के लिए ऐसा शास्त्र होना चाहिए जो सभी को समझ में आए जिससे ज्ञान एवं चारित्र में वृद्धि हो। अतः इसके लिए सम्यक्त्व कौमदी, श्रेणिक चरित्र, पाण्डव पुराण, प्रद्युम्न चरित्र, पद्म पुराण, धर्म परीक्षा आदि ग्रन्थ लाकर पढ़ना चाहिए।

नोट- यदि यह "मन्दिर" पुस्तक आपको अच्छी लगे तो आप सभी को पढ़ायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपाइये। ट्रस्ट-न्यास-फाउन्डेशन आदि द्वारा छपाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

वर्तमान लागत मूल्य 10/- रूपया ***प्रकाशक***

संस्कार से संस्कृति

जीवादि तत्त्व प्रतिपादकाय,
सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशान्त रूपाय-दिगम्बराय,
देवाधिदेवाय-नमो जिनाय।।

जय बोलो देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ भगवान की ......
शारदे ! शरद सी शीतल.......
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की......
जय बोलो गुरुवर्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज की......
जय बोलो अहिंसामयी शिखरजी की.... ..

जीवन में कभी-कभी सरल-से-सरल, छोटी-सी-छोटी बातें बहुत कठिन हो जाती हैं समझने के लिये, क्योंकि हम समझते हैं कि ये बातें सरल हैं। सरल हैं इसलिए हमारे मन में उन सरल-सी बातों में आकर्षण-लगाव या दिलचस्पी नहीं होती है। खास करके रोज-रोज मन्दिर जी जाने जैसी प्रक्रिया पर। हमारे विद्वान-साधु-आचार्य जी भी कम बोलते हैं इस प्रक्रिया पर, क्योंकि वे समझते हैं कि सब समझदार हैं, मन्दिर जी जाते हैं। इस विषय पर क्या बोलें? हाँ, बोलेंगे भी तो ऐसा कि मन्दिर जी आना चाहिये। बिना मंदिर जी आये तो आप जैन ही नहीं हो सकते। मन्दिर जी आने से आपके स्वर्ग की सीट सुनिश्चित है। बस ऐसी कुछ रटी-रटाई सी बातें हम बहुत दिनों से सुनते आ रहे हैं और आगे भी इसी तरह कुछ हेर-फेर करके सुनते चले जायेंगे। क्या इतना ही सुनना है? नहीं, अब हमें अपने जीवन में मन्दिर जी आने का क्या महत्त्व है? मन्दिर क्या है, मन्दिर में कौन हैं, कैसे हैं, क्यों हैं आवश्यक? आदि-आदि इन्हीं प्रश्नों को समझना है हमें। **वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक, सामाजिक-धार्मिक-आगमिक तौर-तरीकों से संस्कारों को सुरक्षित रखने की पद्धति संस्कृति कहलाती है। संस्कृति वही जीवन्त है जिसके संस्कार सुरक्षित आधारित है। हमारे जीवन के संस्कारों का प्रथम-आदि मंगलाचरण मन्दिर है।** क्योंकि जब बालक/बालिका को जन्म के चालीस-पैंतालिस दिनों के बाद माँ के साथ मन्दिर जी लाया जाता है, तब श्री जिनदर्शन कराकर, णमोकार महामंत्र बालक/बालिका के कानों में सुनाया जाता है। इसी के साथ ही उन्हें मद्य (शराब), मांस (गोश्त), मधु (शहद) एवं पंच-उदम्बर (बड़, पीपल, पाकर, गूलर, कठूमर) का त्याग कराकर अष्ट मूलगुण धारण कराये जाते हैं। इस कार्य को गृहस्थाचार्य (पण्डित), विद्वान, त्यागी एवं मुनि-आचार्य या कोई समझदार-बुजुर्ग पुरुष या महिला

भी सम्पन्न करवा सकते हैं। इन बालक/बालिकाओं के आठ वर्ष के बड़े होने तक इस त्याग की जिम्मेदारी माता-पिता या पालन-पोषण करने वाले कुटुम्बीजनों पर रहती है। सभी को चाहिए की इन बालक/बालिकाओं को आठ वर्ष तक अपने हाथों से खान-पान में, औषधि आदि में भी मद्य-मांस-मधु का सेवन नहीं करायें।

आठ वर्ष की उम्र के बाद इन बालक/बालिकाओं को समझा दें कि ये वस्तुऐं (मद्य-मांस-मधु आदि) अत्यन्त अपवित्र हैं। तुम्हें बचपन में इनका नियम दिया गया था। अतः अभी तक हमने तुम्हारे नियम का पालन कराने का पूर्ण ध्यान रखा। अब तुम इस नियम का पूर्णतः पालन करना, अन्यथा "**निन्दित वस्तु के सेवन से तुम्हारा सुन्दर जीवन भी निन्दित हो जायेगा। प्रशंसित वस्तु के सेवन से तुम्हारे जीवन में पूज्यता-पवित्रता आयेगी जिससे तुम्हारा आत्म-गौरव बढ़ेगा और तुम दुर्गतियों के दुःखों से बच जाओगे।**"

आज जैन धर्म के आचार्य-साधु एवं प्रबुद्ध व्यक्ति इस बात का चिन्तन-मनन-विचार एवं अनुभव कर रहे हैं कि हमारी धर्म संस्कृति के संस्कारों की कमी, हमारी युवा पीढ़ी में होती जा रही है। लेकिन उनके संस्कारों के विकास के लिये कोई ठोस उपाय नहीं खोजा-सोचा जा रहा है जो तुरन्त कार्य रूप में परिणत हो। तब लगता है कि-

"साहिल के तमाशाई हर डूबने वाले का
अफ़सोस तो करते हैं इमदाद नहीं करते।"

ठीक ही है, अफ़सोस करना उनका, जो स्वयं तैरना नहीं जानते, वे डूबने वाले को कैसे बचा सकते हैं? जिन्हें स्वयं तैरना सीखने में रुचि नहीं, वे मात्र पुस्तक पढ़कर तैरना थोड़े ही सीख सकते हैं। अतः जिन्हें पानी में तैरना आता है, वे पानी में डूबते हुये व्यक्ति को नहीं देख सकते। परन्तु तुरन्त कूदकर उसे बचाने का प्रयत्न करेंगे या जो तैरना जानते हैं उन्हें/उसे बचाने की सूचना चिल्ला-चिल्लाकर देते हैं, जिससे कोई तैरने वाला व्यक्ति इस आवाज को सुनकर तुरन्त आ जाता है और पानी में डूबने वाले को बचाने का प्रयत्न करता है। पुनः उस हल्ला मचाने वाले व्यक्ति के मन में भी पानी में तैरने की भावना एवं साहस आ जाता है। कई बार तो डूबते हुए व्यक्ति को बचाने की प्रबल भावना में, बिना तैरने वाले व्यक्ति पानी में कूद जाते हैं जिससे डूबने वाले के साथ स्वयं ही डूब जाते हैं। अतः पानी में तैरना सीख लेना चाहिए अन्यथा पानी में डूबना/डुबाना सुनिश्चित है।

बहुत पुरानी बात है। एक सौदागर समुद्र के रास्ते से व्यापार करता था नाव में बैठकर। व्यापार करते-करते उसे बहुत दिन हो गये। व्यापार में वह यहाँ से माल नाव में लादकर ले जाता एवं दूसरे द्वीप में उस माल को बेचकर वहाँ से कम लागत का माल नाव में भरकर ले आता। इस प्रकार वह सौदागर दुहरा व्यापार कर खूब धन कमाता था।

एक दिन उसका एक पुराना मित्र उसे रास्ते में मिला और उससे कहने लगा कि भाई, तुम्हारा मार्ग समुद्री मार्ग है, बहुत खतरनाक मार्ग है और नाव भी अब बहुत पुरानी हो गई है। न जाने कब समुद्र में ऐसी आँधी-तूफान आ जाये या कोई जलीय जीव-जन्तु नाव को पलट दे। अतः तुम अब तैरना सीख लो। गाँव में एक कुशल तैराक आया हुआ है, तीन दिन में ही तैरना सिखा देता है।

अपने मित्र की बात सुनकर सौदागर बोला कि तैरना सीखने के लिये तीन दिन चाहिये। हमारे पास तो तीन मिनट का भी समय नहीं है। हमारी नाव लदी खड़ी है जाने के लिये। तीन दिन में तो हम लाखों रुपयों का व्यापार इधर से उधर कर देंगे। क्या जरूरत तैरना सीखने की। क्यों फालतू समय पानी में तैरना सीखने में लगाया जाये। **आज की जिन्दगी में तो व्यक्ति को मरने तक का समय नहीं है। दूसरा भी कोई मरे तो रविवार का दिन ठीक रहता है, रविवार छुट्टी का दिन है फिर भी उस दिन उसकी अर्थी में पैदल चलकर श्मशान घाट नहीं जायेगा। मात्र खानापूर्ति के लिये गाड़ी में बैठकर सीधा श्मशान घाट पहुँच जायेगा। यह हमारी समय की व्यस्तता का प्रमाण-पत्र है।**

मित्र ने सौदागर को बहुत समझाया, लेकिन सौदागर ने मित्र से आग्रह किया कि हमारे पास तीन दिन का समय नहीं है पानी में तैरना सीखने के लिये। हाँ, समुद्र में खतरे से निपटने के लिये कोई आसान तरीका हो तो बताओ। तब उसका मित्र बोला कि तब तो तुम एक काम करो- दो खाली पीपे (कुप्पे) बाजार से खरीद लो और उन्हें झलवा (पैक) कर जहाँ तुम नाव में बैठते हो उसके नीचे रख लेना जब समुद्र में ऐसा कोई खतरा हो, नाव डूबने लगे तो दोनों पीपों को लेकर कूद जाना, जिससे तुम डूबने से बच जाओगे। सौदागर ने सोचा- यह तो बहुत आसान तरीका है पानी में डूबने से बचने का। उसने अपने मित्र को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

सौदागर ने बाजार से दो खाली पीपे खरीदे और उन्हें सील (पैक) बन्द करवा कर नाव में अपनी सीट के नीचे रख लिया और चल पड़ा व्यापार करने विदेश यात्रा पर। इस बार व्यापार में बहुत लाभ हुआ उस सौदागर को। अतः सौदागर ने सोचा कि इस देश में स्वर्ण सस्ता है और हमारे देश में महँगा। क्यों न यहाँ से खरीदकर उन दोनों खाली पीपों में भर लूँ। सुरक्षित के सुरक्षित अपने पास ही पीपे रखे रहेंगे। जरूरत पड़ी तो उन्हें पकड़कर समुद्र में कूद भी सकते हैं। ऐसा सोचकर उसने उन दोनों पीपों में स्वर्ण के सिक्के भर लिये और नाव में अपनी सीट के नीचे रख लिये।

क्या हुआ? समुद्र के बीच पहुँचते ही समुद्र में ऐसा आँधी-तूफान आया कि कभी नहीं आया था। नाव पानी में घूमने लगी, दिशाहीन हो गई और समुद्र का पानी नाव में भरने लगा। नाविकों ने बहुत कोशिश की नाव को बचाने की लेकिन नाव जब डूबने लगी तो सभी नाविक

तो तैरना जानते थे, वे तो पानी में कूदकर तैरने लगे। सौदागर ने सोचा- मेरे पास तो दो पीपे हैं, इन्हें लेकर कूद जाऊँगा तो सोना भी बच जायेगा और मैं भी। लेकिन जैसे ही सौदागर उन स्वर्ण से भरे हुए पीपों को लेकर समुद्र में कूदा, आज तक ऊपर श्वांस लेने नहीं आया। जैसे ही डूबा जलीय जन्तुओं ने खा लिया।

जिस प्रकार उस सौदागर के पास पानी में तैरना सीखने के लिये तीन दिन का समय नहीं था सो पानी में डूबकर मर गया। एक अवसर भी दिया कि खाली पीपों को पास रखना। इसके सहारे भी तुम तैर सकते हो पानी में। लेकिन उस सौदागर ने लोभ के कारण उन खाली पीपों को भी पाप रूपी स्वर्ण से भर लिया और संसार समुद्र में डूब गया।

उसी प्रकार से जो हमें मनुष्य-जन्म संसार समुद्र से पार होने के लिये मिला था, यह जीव व्रत-नियम-संयम आदि के माध्यम से आत्मिक शक्ति को जाग्रत करके संसार समुद्र तिर सकता है। **लेकिन यदि आपके पास इतना समय नहीं है व्रत-नियम-संयम पालन करने के लिये तो कम से कम "मन्दिर" एक ऐसा खाली पीपा है जिसके सहारे से भी व्यक्ति संसार-सागर का किनारा पा सकता है।** लेकिन व्यक्ति ने मंदिर जैसी प्रक्रिया की उपेक्षा कर दी है। उसे भी नाना प्रकार की सांसारिक आकांक्षाओं की पूर्ति का स्थान बना लिया है। जिससे यह जीव संसार समुद्र में डूब रहा है। अतः कम से कम **"मंदिर जी"** जैसा खाली पीपा अपने पास हमेशा सुरक्षित रखें और हमेशा मंदिर जी जाकर अपने जीवन को कृतार्थ करें।

'समयाभाव' आज के हर वर्ग के, हर व्यक्ति का एक तकिया कलाम बन गया है। यदि उनसे पूछा जाये कि आप सुबह प्रतिदिन मंदिर जी जाते हो, स्वाध्याय(धर्म ग्रन्थ) करते हो, साधु-त्यागी, संत-महात्मा, विद्वानों की संगति करते हो, प्रवचन सुनते हो आदि-आदि। तो इन सभी बातों का एक ही उत्तर मिलेगा-समय नहीं मिलता। जब धर्म कार्य के लिये समय नहीं मिलता है तो सुबह घूमने जाना, टी.वी. देखना, अखबार-मैगजीन, नोवेल आदि पढ़ना, पार्टी क्लब आदि में जाना, घंटों डाक्टर के यहाँ लाईन लगाकर इन्तजार करना। इस सबके लिये समय कहाँ से मिल गया? तो कहते हैं कि यह तो समय की माँग है पुकार है, आज विज्ञान का युग है, विश्व की हरेक जानकारी होना परमावश्यक है। **क्या आपने कभी सोचा कि जिस संस्कृति में हमारा जन्म हुआ, उसके कितने संस्कार हमारे पास हैं? हमें इसकी कितनी जानकारी है।**

जब हमें धर्म के बीज रूप संस्कार चिन्ह-प्रतीकों के प्रति श्रद्धा-आस्था नहीं होगी, तब हमारी धर्म-संस्कृति जीवित कैसे रह सकती है। फिर हम कहते फिरें कि धर्म संस्कृति का अभाव-ह्रास होता जा रहा है। अतः इस धर्म संस्कृति रूपी दीपक को जलाये रखने के लिये संस्कारों का तेल डालना जरूरी है, अन्यथा हम सब पर पापों का अन्धेरा छा जायेगा। अतः आप अपनी

धर्म-संस्कृति के दीपक को अपनी आंखों से बुझते हुए नहीं देखें। बल्कि स्वयं संस्कारवान बनकर दूसरों को भी सुसंस्कारवान बनने की प्रेरणा दें, अन्यथा इस संस्कृति के जलते दीपक में संस्कारों का तेल कम है। ऊपर से भौतिकता की अंधी आँधी का भी जोर है। कब तक यह संस्कृति का दीप जला रह सकता है? यह कल्पना आप स्वयं करें।

इन सबके जिम्मेदार हम सब हैं। यदि हम सब मिलकर दृढ़ता पूर्वक संकल्प लेकर जाग्रत हो जायें तो खोये हुये संस्कारों को हम पुनः प्राप्त कर सकते हैं। कमी है तो सिर्फ संकल्प की। जिन्होंने तीव्र संकल्प कर लिया, उनकी चेतना-शक्ति रोम-रोम से जाग जाती है। **यदि वास्तव में आपको धर्म-संस्कृति के प्रति जाग्रत होना है तो संकल्प कीजियेगा। हमारे सुसंकल्प ही संस्कृति के प्रति जगा सकते हैं।** क्योंकि संकल्प से शक्ति संचित होती है, शक्ति संचय से कार्य में उत्साह-उमंग एवं आदर होता है। जहाँ पर उत्साह-आदर होगा, वहाँ नियम से कार्य को सफलता मिलेगी।

संकल्प वही है जिसमें उत्साह हो, अच्छे कार्य करने का पूर्ण समय हो, समय पर ही हर कार्य को सम्पादित करें। क्योंकि संकल्प करने से हमारा भटकता हुआ उपयोग स्थिर हो जाता है, जिससे उत्साह एवं आनन्द की अनुभूति होती है। **संकल्प की भाषा में लेकिन, किन्तु, परन्तु अगर तगर-मगर जैसे शब्द नहीं होते हैं क्योंकि संकल्प की भूमि पर ही संस्कार के बीज बोये जाते हैं, उसी में धर्म संस्कृति के फल-फूल लगते हैं।** अतः हम पहले-पहल केवल मन्दिर जी जाने तक का नियम बना लें, संकल्प ले लें। पुनः धीरे धीरे ही मंदिर जी सम्बन्धी अन्य जानकारियों के साथ हम भावनात्मक तरीके से जुड़ते चले जायें। मात्र मन्दिर जी आना ही आपके अपने खोये हुए संस्कारों को पुनः स्थापित, निर्मापित करने के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

आज बस इतना ही...

बोलो महावीर भगवान की.....

जो अपने आराध्य के विषय में कुछ नहीं जानता है उसकी आराधना का कोई मूल्य नहीं है।

आप अपने भौतिक सुख के लिये धर्म के सुसंस्कारित साधनों को मत ठुकराईये अन्यथा आपका एवं आपके भौतिक साधनों का भी वही हाल होगा जो रूस में लेलिनवाद का हुआ।

- अमित वचन

देवा-सुरेन्द्र-नर-नाग-समर्चितेभ्यः
पाप-प्रणाशकर-भव्य-मनोहरेभ्यः ।
घंटा-ध्वजादि-परिवार विभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्व जिनालयेभ्यः ।।

जय बोलो त्रिकाल वन्दनीय कृत्रिमा-कृत्रिम जिनालयों की.....
शारदे! शरद-सी शीतल......
जय बोलो श्री आदर्शमति जिनवाणी **माता की.....**
जय बोलो परम पूज्य आचार्य गुरु श्री धर्मसागर जी महाराज की....
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की.....

आदर्श दर्पण को कहते हैं। दर्पण का कार्य हमारी मुखाकृति पर आई हुई विकृति को दिखाना है, छुटाना नहीं। विकृति को जानकर छुटाने का हमें स्वयं प्रयत्न-पुरुषार्थ करना होता है। बाह्य शरीर में आई हुई विकृति को तो हम दर्पण से जान सकते हैं, परन्तु अन्तरंग की विकृति को बताने वाला क्या कोई ऐसा दर्पण है जिससे हमें अपने अन्दर के विकारों का ज्ञान हो सके? आज के युवा हृदय की बातें बड़ी अजूबी लगती हैं। मन्दिर जी में जाकर क्या करें? वहाँ तो पत्थर की मूर्ति है। पत्थर की उपासना से हमें क्या मिल सकता है?

पत्थर भी यदि कभी परमात्मा बने होते तो,
हम इन्सान बनने के पहले पत्थर बन गये होते।।

अतः मन साफ होना चाहिये। व्यर्थ के आडम्बर से क्या लाभ? ऐसे ही बहुत से प्रश्न प्रायः कितने मनों में उठा करते हैं। **धर्म एक 'समीचीन (सच्ची) श्रद्धा' का विषय है और श्रद्धा गुणों के प्रति होती है।** जिस प्रकार आप अपने कमरे में अपने पूज्यनीय माता जी, पिता जी, दादा जी, आदि का चित्र लगाते हो। यह चित्र तो मात्र कोरे कागज पर खिंची हुई कुछ रेखाओं का समीकरण है अथवा रंगीन कैमरे से लिया गया एक सुन्दर चित्र है। परन्तु आप उनके गले में पुष्पमाला या हार पहनाकर, अगर बत्तियाँ-दीपक जलाकर, उनके प्रति आप अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। कहते हैं कि यह हमारी माता जी हैं, पिता जी, दादा जी हैं आदि। इनसे हमें प्रेरणा मिलती है उनके समान पुरुषार्थ करने की याद आती है, उनके विनम्र स्वभाव की, उनके उज्ज्वल चरित्र की, मान, प्रतिष्ठा, गौरव की।

इसी प्रकार से अन्य-अन्य चित्रों को देखकर अतीत का इतिहास हमारे सजीव होकर घूमने

लगता है। जैसे-चित्तौड़गढ़ का किला मेवाड़ के महाराणा प्रताप की शूरवीरता का एवं उनके ही वफादार मंत्री भामाशाह की दानवीरता का परिचय देता है। झाँसी का किला महारानी लक्ष्मीबाई के पौरुष की याद दिलाता है। अन्य स्वतंत्रता की लड़ाई में लड़ने वाले देश भक्तों की मूर्तियाँ, देश को आजादी दिलाने में दिये गये अपने तन-मन-धन की बलिदान की आज भी हमें प्रेरणा दे रहे हैं। जब इन सब वस्तुओं, व्यक्तियों से कुछ न कुछ हमें प्रेरणा मिलती है, तब क्या इस पाषाण की प्रतिमा का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा।

शाबाश पत्थरों होशियारी इसको कहते हैं।
बिन तरसे थे तो पत्थर थे, तरासे तो खुदा निकले।।

यह प्रतिमा भी उन महामानवों की है, जिन्होंने अपने मनुष्यत्व का सम्पूर्ण विकास करके केवल ज्ञान ज्योति को उपलब्ध कर लिया। पुनः संसार के जीवों को हितोपदेश देकर कल्याण-प्रद मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे सर्वज्ञ, वीतरागी एवं हितोपदेशी ही जिनका लक्षण है, वे भगवान अर्थात् पूर्ण ज्ञानवान हैं। इनका जीवन चरित्र आन्तरिकता से आदर्श रूप है। अतः **जिनका अन्तरंग आदर्श होगा, उन्हीं के अन्दर हम झाँककर ही अपने अंतरंग के विकारों को देख सकते हैं।**

अतः ऐसे तत्त्वदर्शी ज्ञानीजनों की प्रतिमा जहाँ पर विशेष विधि से प्राण-प्रतिष्ठा (पंच-कल्याणक) पूर्वक स्थापित होती है, उसे हम मन्दिर कहते हैं, मन्दिर भी नवदेवताओं (पंच परमेष्ठी, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय) में से एक देवता रूप पूज्यनीय माना गया है, जिसे हम चैत्यालय भी कहते हैं। प्रतिमा प्रतिष्ठापन से पूर्व ही इन मन्दिरों का शुद्धिकरण मन्त्रों के द्वारा होता है। **"मन्दिर का यथार्थ अर्थ संस्कृत के अनुसार शरण होता है। संसार के दुःखों से भयभीत प्राणियों के सहारे को 'शरण' कहते हैं। अतः प्रतिदिन मन्दिर जी आने का मतलब है-अपने आपको दुखों से छुटकारा दिलाने का उपक्रम करना।"**

हमें बचपन से ही मन्दिर जी जाने की प्रेरणा दी जाती रही। चाहे वह प्रेरणा हमें धर्मगुरुओं से मिलती हो या हमारे विद्वान, पण्डित, समाज, घर, कुटुम्ब, परिवार आदि से। किन्तु मन्दिर जाने से, देव दर्शन करने से हमें क्या मिल सकता है? हमें मन्दिर कैसे आना चाहिए, देव दर्शन कैसे करना चाहिए? आदि महत्त्वपूर्ण विषयों को जब तक हम वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक एवं मौलिक चिन्तन की भूमिका से धार्मिक महत्त्व को नहीं समझेंगे, तब तक हम इस धर्म की प्रथम भूमिका में होने वाली मन्दिर आने की, देव दर्शन की क्रिया की उपेक्षा कर देते हैं। अतः आज हमें इस विषय पर चर्चा शुरु करनी है कि मन्दिर जाने से पूर्व की हमारी क्या भूमिका होनी चाहिये?

ब्रह्म बेला का महत्त्व

विश्व की प्रायः सभी धर्म संस्कृतियाँ प्रातःकाल की ब्रह्मबेला को महत्त्व देती है। परन्तु हमें यह नहीं मालूम कि ब्रह्मबेला कहते किसे हैं, इसका क्या महत्त्व है? **सूर्योदय के चौबीस मिनट पहले से सूर्योदय के चौबीस मिनट बाद तक का समय ब्रह्मबेला या ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है। इसे ही आत्म-जागरण का समय कहा है। क्योंकि तीर्थंकरों की वाणी इसी मुहूर्त में खिरती है।** जिस प्रकार सरोवर में कमल दल इसी समय खिलते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म मुहूर्त में जागने से हमारा हृदय-कमल भी खिल जाता है, जिससे हमारे जीवन में निरोगता का संचार होता है एवं इस समय मन में जो भी शुभ संकल्प लिये जाते हैं, दृढ़ हो जाते हैं। उससे व्यक्ति के अन्दर आत्म विश्वास एवं कार्य करने की दृढ़ क्षमता उद्भूत होती है। प्रातःकाल उठकर क्या विचार करना चाहिये- इस विषय में पं० आशाधर जी ने सागारधर्मामृत ग्रन्थ में लिखा है कि-

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय पंच नमस्कार कृते सति।
कोऽहं! को मम! किं निज धर्मः इति विचिन्त्येत्।।

अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त में निद्रा छोड़कर पंच नमस्कार (णमोकार) मन्त्र कम से कम नव बार पढ़ना चाहिये। यदि आपके पास समय है तो पूरे एक सौ आठ बार जपना चाहिये। विश्व में णमोकार मंत्र ही सार्वभौमिक,सर्वकालिक मंत्र है जिसे हर परिस्थिति में मौनपूर्वक जपा जा सकता है। कहा भी है-

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं, सर्व पापै प्रमुच्यते।।

अतः आप अपने शरीर-वस्त्रों आदि की शुद्धि का विचार न करते हुए पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान-जाप कर सकते हैं। इसमें कोई दोष-पाप नहीं है। इसके बाद स्वयं का विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ? मनुष्य हूँ, जैन हूँ, आत्मा हूँ। इस संसार में मेरा कौन है? इस संसार में सब स्वार्थी जीव हैं, स्वार्थ पूरा होने पर कोई नहीं पूछता। अतः धर्म के समान मेरा अन्य निरपेक्ष, निस्वार्थ बन्धु हितकारी नहीं है। मेरा क्या धर्म है, कर्त्तव्य है? मैं एक साधारण श्रावक हूँ, गृहस्थ हूँ। इसलिये मेरा प्रमुख धर्म तो देव-पूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षड् आवश्यक कर्म है। पुनः मन में विश्वकल्याण की भावना करें कि आज का दिन विश्व के समस्त प्राणियों को मंगलमय हो। संसार के समस्त प्राणी सुख शान्ति प्राप्त करें। मेरा किसी भी जीव के प्रति वैर-भाव नहीं हो। राजा-प्रजा एवं राष्ट्र का अमंगल दूर हो। सर्वत्र शांति हो। सभी के दुख, दारिद्र दूर हों। इस प्रकार शुभ विचार प्रतिदिन करना चाहिये। शुभ विचारों

को संस्कारित करने के लिये "**जिसने रागद्वेष कामादिक जीते....**" वाली, "**मेरी भावना**" याद कर लेना चाहिये और उसे गुन-गुनाते रहना चाहिये।

पुनः आँखें खोलकर, दोनों हस्त कमलों को जोड़कर, दोनों अंगूठों को छोड़कर, शेष बीच की आठ ऊँगुलियों के चौबीस पोरों में चौबीस तीर्थंकरों के नाम स्मरण करते हुए, हाथों को देखें। कई महानुभावों को चौबीस भगवानों के नाम भी याद नहीं होंगे। यदि नाम याद हुए भी तो उनके चिन्ह याद नहीं होंगे। अतः उनकी स्मृति के लिये चौबीस तीर्थंकरों के नाम चिन्ह सहित लयबध्य पढ़ सकें, याद कर सकें, इस उद्देश्य से बोलो-

ऋषभनाथ के बैल बोलो, अजितनाथ के हाथी।
सम्भवनाथ के घोड़ा बोलो, अभिनन्दन के बन्दर।
सुमतिनाथ के चकवा बोलो, पद्मप्रभ के लाल कमल।
सुपार्श्वनाथ के सांथिया बोलो, चन्द्र प्रभ के चन्द्रमा।
पुष्पदन्त के मगर बोलो, शीतलनाथ के कल्पवृक्ष।
श्रेयांसनाथ के गैंडा बोलो, वासुपूज्य के भैंसा।
विमलनाथ के शूकर बोलो, अनन्तनाथ के सेही।
धर्मनाथ के वज्रदण्ड बोलो, शान्तिनाथ के हिरण।
कुन्थुनाथ के बकरा बोलो, अरहनाथ के मछली।
मल्लिनाथ के कलशा बोलो, मुनिसुव्रत के कछुआ।
नमिनाथ के नीलकमल हैं, नेमिनाथ के शंख।
पार्श्वनाथ के सर्प बड़ा है, महावीर के सिंह।

हाथ (कर) दर्शन का महत्त्व अन्य शास्त्रों में भी बताया गया है-

कराग्रे वसते लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
कर मूले तु गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम्।।

अर्थात् हाथ के अग्रभाग में लक्ष्मी का, मध्य भाग में सरस्वती का एवं मूल भाग में हरि! प्रभो!! ईश्वर!!! का निवास है। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल हाथ (कर) का दर्शन करना चाहिये।

उपर्युक्त श्लोक बोलते हुए अपने हाथों को देखो। यह मनोवैज्ञानिक एवं अर्थपूर्ण प्रक्रिया है। इससे व्यक्ति के हृदय में आत्म-निर्भरता, स्वावलम्बनता की भावना का उदय होता है। यदि वह ऐसा नहीं करे तो वह अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में दूसरों की तरफ, दूसरों का मुख देखने का अभ्यासी बन जाता है। अतः संसार में मनुष्य जो भी भला या बुरा कार्य करता है, हाथों से ही करता है। ये हाथ ही धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की कुंजी हैं।

मूल श्लोक में बताया गया है कि मानव जीवन की सफलता के लिये संसार में तीन अवलम्बनों की आवश्यकता है- लक्ष्मी यानि धन, सरस्वती यानि ज्ञान और गोविन्द यानि ईश्वर या धर्म। संसार अवस्था में इनमें से एक के बिना जीवन अधूरा है। ये तीनों लक्ष्यभूत अवलम्बन हमारे हाथ जो कि कर्म का प्रतीक हैं, इसमें निवास करते हैं, अर्थात् अपने हाथों के द्वारा ही शुभाशुभ कार्य करके हम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। इसलिये अपने हाथों को देखते हुए श्लोक में निसृत भावना को अपने हृदय में बिठाना चाहिये। भावना करना चाहियें कि मैं अपने जीवन में एक आदर्श व्यक्ति बनूँ। मैं किसी के सहारे न रहकर अपने हाथों से परिश्रम करके धनोपार्जन से दरिद्रता को, विद्या-उपार्जन से मानसिक जड़ता-अज्ञानता को एवं प्रभो भक्ति से मोक्ष पद की सिद्धि करूँगा।

मन्दिर जी जाने से पूर्व क्या करें?

इस प्रकार शुभ संकल्प करके दैनिक शौचादिक क्रियाओं से निपटकर, छने हुये जल से स्नान करना। नहाते समय शैम्पू या चर्बीयुक्त साबुन प्रयोग नहीं करना चाहिये। पुनः धुले हुए साधारण वस्त्र पहनकर मन्दिर जी आना चाहिये। क्योंकि यदि हम चमकीले-भड़कीले वस्त्र पहनकर मन्दिर जी आते हैं तो अन्य लोगों का मन, भगवान के दर्शन-पूजन-स्वाध्याय से हट जायेगा, जिससे हमें पापबन्ध होगा। **वैसे प्राचीन समय की मन्दिर आदि आने की वेषभूषा, स्त्री-पुरुषों के लिये पीले या सफेद रंग की साड़ी-धोती-दुपट्टा था, जिससे व्यक्ति अपने आप में संयमित रहता था और धर्म-ध्यान में खूब मन लगता था। याद रहे कि हमें चमड़े के बने बेल्ट, जूते-चप्पल, पर्स आदि का प्रयोग में नहीं लेनी चाहिये। क्योंकि जिस जानवर का चमड़ा होगा, उसी जाति के सम्मूर्च्छन जीव (बैक्टीरिया) हमारे शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होकर मरते रहते हैं। माता-बहिनों को अपने ओठों में लिपिस्टिक या नाखूनों में नेलपालिस नहीं लगाना चाहिये। क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ जीवों के खून से निर्मित होती हैं सेन्ट आदि भी हिंसक तरीके से निर्मित होते हैं।** अतः मन्दिर जी आते समय इनका भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। ध्यान रहे कि हमारा मुख भी जूठा नहीं होना चाहिये, अर्थात् मुख में लौंग, इलाइची, सौंफ, सुपारी, तम्बाकू, गुटका, पान मसाला आदि नहीं होना चाहिये। **मुख शुद्धि से हमारे पाठ या मन्त्रोच्चारण एवं शरीर की शुद्धि बनी रहती है एवं हमारे अन्दर पूज्यों का बहुमान एवं विनम्र गुण प्रगट होता है।**

हमें अपने घर से ही शक्त्यानुसार शुद्ध मर्यादित जल-चन्दन, अक्षत-पुष्प-नैवेद्य-दीप-धूप और फलादि यथायोग्य अष्टद्रव्य थाली या डिबिया आदि में रखकर, ईर्यापथ यानि नीचे चार हाथ जमीन देखकर चलना चाहिये।

मन्दिर जी में भगवान को निश्चित यही द्रव्य चढ़ाना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है। यह तो श्रद्धा-भक्ति-शक्ति के अनुसार ही द्रव्य चढ़ाया जा सकता है। इस विषय में पण्डित श्री सदासुखदास जी ने '**रत्नकरण्ड श्रावकाचार**' ग्रन्थ की टीका में निम्न रूप से लिखा है-

समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपना-अपना सामर्थ्य, देशकाल के योग्य अनेक स्त्री, पुरुष, नपुंसक, धनाढ्य-निर्धन, सरोग-निरोग जिनेन्द्र की आराधना करें हैं। कोई ग्राम निवासी हैं, कोई नगर निवासी हैं, कोई वन निवासी हैं, कोई अति छोटे ग्राम में बसने वाले हैं। जिनमें कोई तो अति उज्ज्वल अष्ट प्रकार की सामग्री बनाय पूजन के पाठ पढ़िकरि पूजन करें हैं। कोई कोरा सूखा जव, गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, उड़द, मूंग, मोठ इत्यादि धान्य की मूठी ल्याय चढ़ावैं हैं। कोई रोटी चढ़ावैं हैं, कोई राबड़ी चढ़ावैं हैं, कोई अपनी बाड़ी तैं पुष्प ल्याय चढ़ावैं हैं, कोई दाल,भात अनेक व्यञ्जन चढ़ावैं हैं, कोई नाना प्रकार के घेवर, लाडू, पेड़ा, बरफी, पुड़ी, पुवा इत्यादि चढ़ावैं हैं। कोई वन्दना मात्र ही करैं हैं, कोई स्तवन, कोई गीत-नृत्य-वादित्र ही करैं हैं। ऐसे जैसा ज्ञान, जैसी संगति, जैसी सामर्थ्य, जैसी धन-सम्पदा, जैसी शक्ति, तिस प्रमाण देश काल के योग्य जिनेन्द्र का आराधक मनुष्य है। तैं वीतराग का दर्शन, स्तवन, पूजन, वन्दना करि भावना के अनुकूल उत्तम, मध्यम, जघन्य पुण्य का उपार्जन करैं हैं।[१]

केवली कैं वा प्रतिमा कै आगै अनुराग करि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहिं। उनके विक्षिप्तता होती नाहिं। धर्मानुराग तैं जीव का भला होय है।[२]

अतः हमें इस विषय में किसी से विवाद नहीं करना चाहिये कि मन्दिर जी में हम क्या चढ़ायें, क्या नहीं? बल्कि विवाद की जगह विवेक से काम लेना चाहिये। तभी हमें इस क्रिया का सही फल प्राप्त होगा। हमारी मुनि दीक्षा अजमेर(राज०) में हुई। वहाँ पर लगातार पाँच नसियाँ बनी हैं। पहली नसिया, जो सोनी जी की नसिया के नाम से प्रसिद्ध है। क्योंकि इसमें सोने (स्वर्ण) की सुन्दर-सुन्दर रचनायें हैं। उन्हें देखने के लिये देशी-विदेशी, जैनी-अजैनी सभी लोग आते हैं। इसी नसिया जी में अनन्त चतुर्दशी एवं निर्वाण लाडू के दिन सोनी जी के परिवार से शुद्ध घर का बना नैवेद्य (व्यञ्जन-पकवान) आज भी चढ़ाया जाता है। बुन्देलखण्ड (म. प्र.) में कई स्थानों पर हमने विहार किया। महावीर जयन्ती पर अनन्त चतुर्दशी, निर्वाण लाडू पर पंचामृत अभिषेक एवं शुद्ध घर का या मन्दिर में ही बना नैवेद्य(व्यञ्जन-पकवान) आज भी जैन मन्दिरों में चढ़ाया जाता है। इटावा (उ. प्र.) में चातुर्मास हुआ, वहाँ भी श्रावकों ने पंचामृत की

---

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पृष्ठ २०९-२१०, पं० सदासुखदास जी टीका-प्रकाशक श्री मध्य क्षेत्रीय मुमुक्षु मंडल संघ, सागर (मध्यप्रदेश) से उद्धृत ।

२. पं० टोडरमल जी, मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्याय ५,पृ. २४१।

धारा एवं कई प्रकार की शुद्ध मिठाईयाँ बनाकर अनन्त चतुर्दशी को चढ़ायीं। और इस विषय में हम विशेष अधिक क्या कहें? **बारह वर्षों में होने वाले जैन कुम्भ मेला, विश्व के अद्भुत आश्चर्य गोमटेश्वर बाहुबली का पंचामृत अभिषेक हम सबकी श्रद्धा का केन्द्र होता है जहाँ उत्तर-दक्षिण का भेद मिट जाता है। इससे अधिक सजीव-सटीक प्रमाण और क्या हो सकता है हम सबके लिये।** अतः इससे सिद्ध होता है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा मन्दिर जी में चढ़ाने वाली सामग्री में भेद हो सकते हैं। इस प्रकार भगवान के दर्शन के लिये जाते समय कुछ न कुछ अपने साथ सामग्री ले जाते हैं। परन्तु एक प्रश्न उठता है कि भगवान तो वीतरागी हैं, उन्हें इस सामग्री को चढ़ाने से क्या प्रयोजन? सुनो नीतिकारों ने कहा है कि-

रिक्त पाणिनैव पश्येत् राजानां देवतां गुरुं।
नैमित्तिक विशेषेण फलेन फलमादिशेत्।।

अर्थात् राजा, देवता, गुरु, नैमित्तिक यानि वैद्य, ज्योतिषी के पास कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये, अर्थात् कुछ न कुछ भेंट लेकर ही जाना चाहिये। क्योंकि फल की प्राप्ति फल से ही होती है। जिस भावना के साथ हम मन्दिर जी जा रहे हैं, उस भावना की सफलता हमारे द्रव्य के साथ निहित है, तभी तो कहा है कि-

द्रव्यस्य शुद्धि-मधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि-मधिका-मधिगन्तु कामः।
आलंबनानि विविधान्य-वलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ यज्ञ पुरुषस्य करोमि यज्ञं।।

शास्त्रों में पढ़ा होगा, सुना होगा कि प्राचीन समय में लोग जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते समय हीरा, मोती, पन्ना-माणिक आदि बहुमुल्य जवाहरात चढ़ाया करते थे। दर्शन कथा में मनोरमा ने गजमुक्ता प्रतिदिन चढ़ाकर भगवान के दर्शन करूँगी, तब भोजन करूँगी, ऐसा नियम लिया था और उसका पालन भी परीक्षा देकर किया। धन्य है ऐसी भव्यात्मा को। अतः भगवान के मन्दिर में सोना-चाँदी आदि द्रव्य चढ़ाना भी हमारी श्रद्धा-भक्ति का द्योतक है। **द्रव्य चढ़ाना हमारे परिणामों को विशुद्ध बनाने में निमित्त है तथा जितने द्रव्य को हम प्रभो चरणों में अर्पण करते हैं, उतना हमारा 'लोभ' का त्याग होता है।** द्रव्य, सामग्री हाथ में होने से हमें रास्ते में भी मन्दिर जी जाने का, देव दर्शन करने का संकल्प बना रहता है।

अहो! देखो!! राजगृही में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण की ओर तिर्यञ्च गति का जीव "मेंढक" अपने मुख में कमल पुष्प की पांखुड़ी लेकर जा रहा था, किन्तु अकस्मात् राजा श्रेणिक के हाथी के पैरों के नीचे दबकर मरा, सो समवशरण के दर्शन के शुभ संकल्प से देव पदवी को प्राप्त हुआ। सुना है, गरीब सुदामा जब नारायण श्रीकृष्ण से मिलने द्वारिका

गये थे, तब वे भी अपने घर से एक पोटली में चावल भेंट देने हेतु साथ ले गये थे। जब तिर्यञ्च जैसे साधनहीन प्राणी एवं गरीब सामान्य मनुष्य भी लोक व्यवहार में अपने पूज्यों के पास खाली हाथ नहीं जाते हैं। तब हम लोग साधन-सम्पन्न होते हुए भी तीन लोक के स्वामी के दर्शन करने खाली हाथ आते हैं। तो उस दर्शन का कोई फल हमें मिलने वाला नहीं है।

"प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम अच्छी किस्म के १०० ग्राम चावल, दो-चार बादाम, सुपारी, लौंग, इलाइची, छुहारे, चिटके आदि मिलाकर प्रतिदिन चढ़ाना चाहिये। जब आप लोग प्रतिदिन व्यसनों- चाय, पान, जर्दा, सिगरेट आदि में पचासों रुपया खर्च कर देते हो, तब क्या श्री जिनेन्द्र देव को पांच रुपये की सामग्री भी श्रद्धा भाव से नहीं चढ़ा सकते हैं? माता-बहिनें भी व्यर्थ के फैशन में प्रतिदिन पचासों रुपये खर्च कर देती हैं, लेकिन भगवान को सामग्री चढ़ाने में कंजूसी करती हैं। घर से पूरी डिब्बी भरकर मन्दिर जी आती हैं, लेकिन थोड़ी-थोड़ी सामग्री चढ़ाकर बची हुई घर वापस ले जाती हैं। इस तरह एक दिन की भरी हुई डिब्बी चार-छह दिन तक चल जाती है।

हम आपसे पूछना चाहते हैं कि यदि आपके घर कोई मेहमान मिठाई का भरा डिब्बा लाये और आपके सामने ही डिब्बे को खोलकर मिठाई को चार टुकड़े आपके बर्तन में रख दे और बाकी अपने साथ ही वापस घर ले जाये तो आपको कैसा लगेगा? या आप किसी के घर मेहमान बनकर जायें और इस प्रकार करें तो दूसरों को कैसा लगेगा? थोड़ी सोचने-विचारने की बात है कि आप लोग तीन लोक के स्वामी के सामने क्या करते हैं? ऐसा करने से हमें क्या फल मिलेगा? अतः हम अपने घर से सामग्री उतनी ही ले जायें जितनी हमें उस दिन मन्दिर जी में चढ़ानी है।

बहुधा लोग एक प्रश्न यह भी करते हैं कि मन्दिर जी में अधिकांशतः चावल ही क्यों चढ़ाये जाते हैं? सुनो! चावल व्यक्ति के जीवन की खाद्य सामग्री का प्रमुख भोजन है। **हर प्रान्त के गरीब-अमीर लोग इसका उपयोग खाने में करते हैं हमारे तीर्थंकरों के दीक्षा के उपरान्त अधिकांशतः क्षीरान्न (चावल की खीर) से ही पारणा हुए। हमारे भोजन के एक ग्रास का प्रमाण भी एक हजार चावलों से माना जाता है।"**

चावल से छिलका अलग होने पर उसमें पुनः अंकुरित होने की शक्ति नष्ट हो जाती है यानि जमीन में बोने से चावल उगता नहीं है। चावल सफेद होने से शुक्ल लेश्या का प्रतीक है। चावल के दाने में कोई जीव-जन्तु अपना घर नहीं बना सकता। अखण्ड (जो टूटे न हों) चावलों को अक्षत भी कहते हैं। उन्हें चढ़ाकर अक्षय पद की कामना करते हैं इत्यादि, कई कारणों से मन्दिर जी में चावल चढ़ाने का अधिक महत्त्व है।

पुनः एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब हमारे प्रभो! वीतरागी हैं, ना तो वे हमें कुछ

देते हैं और न हमसे कुछ माँगते हैं, तब हम उनके लिये इतनी बहुमूल्य सामग्री क्यों चढ़ाते हैं? कुछ सामग्री जैसे-फूल-दीप-धूप-फल चढ़ाने में तो कुछ हिंसा या सावद्यता भी होती है, फिर हम उन्हें क्यों चढ़ाते हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्वामी समन्तभद्राचार्य जी ने स्वयंभू स्तोत्र में तीर्थंकर वासुपूज्य जी की स्तुति करते हुए दिया है-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ! विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।।५७।।
पूज्यं जिनं त्वा-र्चयतो जनस्य, सावद्य लेशो बहुपुण्य राशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीत शिवाम्बु राशौ।।५८।।

हे वीतराग प्रभो! आपकी पूजा करने पर आप प्रसन्न नहीं होते एवं आपकी निन्दा करने पर आप वैर धारण नहीं करते हैं। फिर भी संसारी प्राणी आपके निर्मल गुणों का स्मरण करके अपने मलिन चित्त को पवित्र कर लेते हैं।।५७।।

"यद्यपि पूज्यों की अर्चना में कुछ आरम्भ (हिंसा) होता है और आरम्भ सावद्य यानि पाप है, किन्तु आपकी पूजा से असीम पुण्य राशि अर्जित होती है। इस अपेक्षा से यह सावद्यता अत्यन्त्य अल्प है।" जैसे- समुद्र की अमृत समान जल राशि में यदि विष की एक बूँद गिर जाये तो समुद्र का पानी जहरीला नहीं हो जाता है। ठीक उसी प्रकार से आपकी पूजा आदि से प्राप्त विशाल पुण्य राशि के सामने पाप की एक छोटी-सी बूँद का क्या महत्त्व है? अर्थात् कुछ भी नहीं। **पूजा-शील-दान-उपवास आदि बिना सावद्यता (आरंभी हिंसा) के नहीं हो सकते हैं ऐसा 'जयधवला' पु० प्रथम, पृष्ठ ९१ में लिखा है।** आज वैज्ञानिक शोधों से सिद्ध हो चुका है कि मंदिरों में धार्मिक अनुष्ठानों से होने वाले अहिंसक यज्ञों में शुद्ध घी आदि की आहूति से पर्यावरण परिशुद्ध होता है। **वैज्ञानिक कहते हैं कि गाय के घी से यज्ञ करने से वायुमंडल में एटमिक रेडिएशन का प्रभाव क्षीण होता है। एक तोला (दस ग्राम) ग्राम घी से यज्ञ करने से एक टन आक्सीजन बनता है। अतः मन्दिरों में घी के दीपक जलाये जाते हैं। लेकिन दीपक को काँच या लोहे की जाली से ढक कर रखें। जिससे त्रस जीवों की हिंसा भी नहीं हो इतना विवेक रखें।** अतः आचार्यों के वाक्य प्रामाणिक मानकर दूसरों की कुछ मनमानी बातों को महत्त्व नहीं देना चाहिये।

'धवला' पुस्तक में आचार्य श्री वीरसेन स्वामी से एक शिष्य ने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है कि हे भगवन्! जब अरिहंत के चार घातिया कर्म नष्ट हो गये, उनमें जो अन्तराय कर्म नष्ट होने से, उनके अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग एवं अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। अतः भगवान अनन्त दान के दाता हुए तो फिर वे हमें अनन्त दान क्यों नहीं देते हैं। यदि देते हैं तो हमें क्यों नहीं दिखता, मिलता है? आचार्य वीरसेन स्वामी इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि हे भक्त! भगवान तो अनन्त दान निरन्तर देते ही रहते हैं। यदि वे अनन्त दान

नहीं दें तो उनका महत्त्व ही घट जायेगा। लेकिन लेने वाले का लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं है तो उसे उस अनन्त दान का लाभ नहीं मिल सकता है।

आप सबने अकृत पुण्य (धन्य कुमार) का चरित्र पढ़ा/सुना होगा। उसने पूर्व भव में मन्दिर के धन को खाया, फिर भी उसका जन्म एक नगर सेठ के यहाँ हुआ। किन्तु उसके गर्भ में आते ही सेठ का धन नष्ट हो गया एवं उसके पैदा होते ही वह सेठ मर गया। अतः उसका नाम अकृत पुण्य रखा गया। किसी तरह उसकी माँ ने मेहनत-मजदूरी करके उसे पाला-पोसा। जब वह चौदह-पन्द्रह वर्ष का हुआ तो एक दिन किसी सेठ के खेत में मजदूरों के साथ उसने भी मजदूरी की। शाम को मजदूरी बाँटते समय मजदूरों ने उस बालक को मजदूरी देने की अनुमोदना सेठ से की, तब उस बालक का परिचय सेठ ने पूछा। तब लोगों ने बतलाया कि यह हमारे पुराने नगर के सेठ के लड़का है। उनकी मृत्यु के बाद इसकी माँ और यह मजदूरी आदि करके ही पेट पालते हैं।

सेठ को उस बालक पर बड़ी दया आयी। सेठ ने सभी मजदूरों को तो निश्चित मजदूरी देकर विदा किया। लेकिन उस अकृत पुण्य को सेठ जी ने करुणा भाव से सोना-चाँदी आदि कीमती द्रव्य दिया। लेकिन जैसे ही अकृत पुण्य के हाथों में वह कीमती द्रव्य आया, वैसे ही अंगारों के समान गर्मी से उसके हाथ जलने लगे, जिससे अकृत पुण्य को बहुत वेदना हुई और उसने वह कीमती द्रव्य वहीं छोड़ दिया। पुनः सेठ जी ने विचार किया कि इसे कुछ अधिक चने देना चाहिये। सोना-चाँदी इसके भाग्य में नहीं है। अतः उसे एक बड़ी पोटली में चने बाँधकर दिये लेकिन पोटली में छिद्र होने से घर आते-आते थोड़े से ही चने उस पोटली में बचे।

अतः कहने का तात्पर्य यह है कि मन्दिर जी में जो भी धन-द्रव्य-सामग्री चढ़ाते हैं, वह हमारे लाभान्तराय कर्म के क्षय-क्षयोपशम में कारण अवश्य बनता है, जिससे हमें चाही-अनचाही अनुकूल वस्तुओं की प्राप्ति अनायास ही होती है इसलिये ऐसा कभी मत सोचो कि मन्दिर जी में द्रव्य चढ़ाने से कुछ नहीं होता। **जब मन्दिर जी का निर्माल्य द्रव्य खाने से दरिद्रता मिल सकती है, तब मन्दिर जी में द्रव्य चढ़ाने से धन-वैभव मिल जाये तो क्या आश्चर्य है?**

आज बस इतना ही.....

बोलो महावीर भगवान की.......

जो व्यक्ति अर्थ की अल्प हानि होने से दुखी होते हैं, उन्हें धर्म की समग्र हानि होने का दुःख क्यों नहीं होता है?

- अमित वचन

देवाधिदेव! परमेश्वर! वीतराग!
सर्वज्ञ! तीर्थंकर! सिद्ध! महानुभाव!
त्रैलोक्य नाथ! जिन पुंगव! वर्धमान!
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरणं चरणं-द्वयं ते!

जय बोलो देवाधिदेव श्री महावीर भगवान की ......
मात जिनवाणी तेरी स्तुति है बार.....
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की.....
जय बोलो आचार्य गुरुवर्य श्री धर्मसागर जी महाराज की.....
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की.......

कल हमने मन्दिर के महत्त्व पर, मन्दिर क्यों आना चाहिये, क्या लाना चाहिये? आदि बातों को सुना था। आज हम चर्चा करेंगे कि अब आगे मन्दिर जी कैसे आना चाहिये आदि?

मन्दिर जी आते समय क्या करें?

घर में स्नानादि के समय या जब से जिनेन्द्र देव के दर्शन की भावना प्रारम्भ होती है, तभी से उस देव दर्शन का फल एवं महत्त्व प्रारम्भ हो जाता है, ऐसा हमारे पूर्व आचार्य कहते हैं कि-

जब चिन्तो तब सहस्र फल, लक्खा फल गमणेय।
कोड़ा कोड़ी अनन्त फल जब जिनवर दिट्ठेय।।

अर्थात् जब हमें भगवान के दर्शन करने का विचार-संकल्प मन में आता है कि अरे! अभी हमें मन्दिर जी जाना है, भगवान के दर्शन करना है। ऐसा चिन्तन आते ही हजार गुणा फल प्रारम्भ हो जाता है। जब आप सामग्री आदि लेकर भक्ति-स्तुति आदि पढ़ते हुये मन्दिर की ओर ईर्यापथपूर्वक चल देते हैं, तब आपको लाख गुणा फल होता है। लेकिन जब आप मन्दिर जी में पहुँचकर साक्षात् जिनमूर्ति के दर्शन करते हैं, तब अवश्य ही अनन्त कोड़ा कोड़ि फल होता है। आपने पढ़ा होगा, सुना होगा कि श्री सम्मेद शिखर जी की प्रत्येक टोंक की वन्दना करने से इतने इतने करोड़ों उपवासों का फल मिलता है। इतना ही नहीं, तत्त्वार्थ सूत्र के रचयिता उमास्वामी आचार्य जी ने भी अन्तिम प्रशस्ति में लिखा है कि-

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुंगवैः।।

अर्थात् तत्त्वार्थ सूत्र के दस अध्यायों का पाठ करने से एक उपवास का फल मिलता है, ऐसा मुनि श्रेष्ठों ने कहा है।

आज के आधुनिक भौतिक युग में इस प्रकार के फल की चर्चा जब की जाती है, तो कुछ इसे प्रलोभन मानते हैं कि इस फल के लोभ से व्यक्ति मन्दिर आना, तीर्थयात्रा करना, सूत्रादि का पाठ करना आदि सीखें। परन्तु ऐसा है नहीं कि मात्र प्रलोभन हो, दिखावा हो और फल कुछ नहीं मिले।

हमारे पूर्वाचार्यों की दृष्टि बड़ी ही वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक थी। उन्होंने एक विशुद्ध गणित निकाला। जैसे- पाँच किलो जल को एक किलो शक्कर से यथार्थ मीठा किया जा सकता है, तथा उतने ही जल को दो चम्मच सेकरीन डालकर मीठा किया जा सकता है। मिठास दोनों में बराबर है। लेकिन कहाँ एक किलो शक्कर और कहाँ दो चम्मच सेकरीन। **ठीक उसी प्रकार से इतने करोड़ दिन के उपवास करके, व्यक्ति अपने जितने कर्मों की निर्जरा करके परिणामों की विशुद्धि प्राप्त करता है, उतने कर्मों की निर्जरा, परिणामों की विशुद्धि उसे एक दिन के मन्दिर जाने, शिखर जी की एक टोंक की वन्दना करने एवं एक दिन के तत्त्वार्थ सूत्र के पाठ करने से हो सकती है/होती है। यदि भावात्मक तरीके से इन सब कार्यों को किया जाये तो इसके फल के बारे में कभी हमें शंका नहीं होनी चाहिये।**

मंदिर जी आते समय रास्ते में कोई भी स्तुति, स्तोत्र, पाठ, प्रार्थना आदि पढ़ते आना चाहिये। जैसे- दर्शन स्तुति, भक्तामर स्तोत्र, विनय पाठ, मेरी भावना, आलोचना पाठ, महावीराष्टक, मंगलाष्टक, गोमटेश स्तुति आदि, चाहे हिन्दी-संस्कृत-प्राकृत किसी भी भाषा में हो, उन्हें कंठस्थ करके ही पढ़ना चाहिये जिससे देव-दर्शन का माहात्म्य प्रगट होता है, उपयोग में स्थिरता आती है। इसी से परिणाम विशुद्ध होते हैं जो हमारे अशुभ कर्मों को नष्ट करने में समर्थ होते हैं। यहाँ संस्कृत का सरल देव दर्शन स्तोत्र बताया जा रहा है। इसे अवश्य ही कण्ठस्थ याद कर लेना चाहिये।

यदि कोई पुस्तक पढ़ने योग्य है तो वह खरीदने योग्य भी है।

- जवाहर लाल नेहरु

देव-दर्शन-स्तोत्र

दर्शनं-देव-देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधुनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्र हस्ते यथोदकम्।।
वीतराग मुखं दृष्टवा, पद्मराग सम प्रभं।
जन्म-जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।
दर्शनं जिन सूर्यस्य, संसार ध्वान्त-नाशनम्।।
बोधनं चित्त पद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम्।
दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणं।
जन्म-दाह-विनाशाय, वर्धनं सुख वारिधे।
जीवादि तत्त्व प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्ट गुणार्णवाय।
प्रशान्त रूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।
चिदानन्दैक रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वरः।।
न हि त्राता, न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।
जिने भक्ति-जिने भक्ति-जिने भक्ति-दिने-दिने।
सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे-भवे।।
जिन धर्म विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिन धर्मानुवासितः।।
जन्म-जन्म कृतं पापं, जन्म कोटि समार्जितम्।
जन्म-मृत्यु जरा रोगं, हन्यते जिन दर्शनात्।।
अद्या भवत्सफलता नयन द्वयस्य,
देव त्वदीय चरणांबुज वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक प्रतिभासते मे,
संसार वारिधि-रयं चुलुक प्रमाणम्।।

स्तुति

प्रभो! पतित पावन मैं अपावन, चरन आयो शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी।।
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकार जी।।
भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।
धन घड़ी धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभो! को लख लयो।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि छवि को हरैं।।
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो।।
मैं हाथि जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारण तरण जी।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर-राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथ जी।।

यह 'प्रभो! पतित पावन' हिन्दी की स्तुति है। इसे भी याद कर लेना और नयी-नयी विनती स्तुतियाँ भी याद करते रहना चाहिये। कम से कम सात दिन के लिये सात पाठ याद होनी चाहिये जिससे प्रतिदिन एक पाठ भक्ति-भाव पूर्वक अर्थ-बोध करते हुए पढ़ सको।

मन्दिर जी प्रवेश विधि

मन्दिर जी में प्रवेश करते समय शुद्ध छने जल से पैर धोने चाहियें। यदि आप जूते, मोजे, चप्पल आदि पहनकर आये हों तो उन्हें यथास्थान ही उतार देना चाहिये। पुनः मन्दिर जी में घण्टा रहता है, उसे क्यों बजाते हैं? घंटा बजाते समय हमारे क्या भाव होने चाहियें? ये प्रश्न प्रायः मन में उठते अवश्य हैं किन्तु यथार्थ समाधान नहीं मिलने से मन कुण्ठित हो जाता है।

सुनो। घंटा 'मंगल ध्वनि' के प्रतीक रूप में बजाया जाता है। घंटे की ध्वनि सुनकर दूर

के लोगों को भी मंदिर जी का स्मरण हो जाता है। **घंटा बजाते समय हमारे भाव होने चाहिये कि इस घंटे की मंगल ध्वनि तरंगें वहाँ पहुँच जायें, जहाँ हम नहीं पहुँच सकते।** ऐसे नन्दीश्वर द्वीप, विदेह क्षेत्र, कैलाश पर्वत आदि ऊर्ध्व-मध्य-अधोलोक में जितने कृत्रिम-अकृत्रिम जिन-चैत्यालय विद्यमान हैं, जिन तीर्थक्षेत्रों की आपने साक्षात् जाकर वन्दना की हो, उनका ध्यान करते हुए, उनको यह मेरी अष्टांग-नमस्कार पहुँचे। घंटे को हल्के हाथों से तीन बार ही बजाना चाहिये।

मंदिर जी में लगा घंटा हमारी विशुद्धि भावनाओं को प्रसारित करने के लिये एक "वैज्ञानिक" यंत्र है। भौतिक युग की दूर संचार प्रणाली, ध्वनि प्रसारक यंत्रों के माध्यम से हमारी भाषा-भावनायें एक स्थान से दूसरे स्थान पर सेकेण्डों में पहुँच जाती हैं। जैसे - पोस्ट ऑफिस में तार करने के लिये एक छोटी-सी डिब्बी खटखटाई जाती है। उसमें कोई शब्द नहीं बोले जाते। मात्र डिब्बी खटखटाने के ढंग से ही समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार से ही घंटे का कार्य है। **इसकी मंगल ध्वनि हमारा मानसिक प्रदूषण दूर करती है।** आपने अनुभव किया होगा कि जब बच्चा रोता है तब उसे झुनझुने आदि की मधुर ध्वनि सुनाकर चुप किया जाता है।

घंटे की ध्वनि से पर्यावरण भी परिशुद्ध होता है क्योंकि पंचकल्याण के समय घंटे को भी मंत्रों से संस्कारित करके लगाते हैं। आपने देखा होगा, लाल मन्दिर, दिल्ली में एक बहुत बड़ा पुराना घंटा मन्दिर के चौक में एक शो केस में लगा है। उसमें कई प्रकार के मंत्र भी उत्कीर्ण है। इसकी ध्वनि से मंत्रों का प्रभाव उद्घाटित होता था। अभी उसका प्रयोग बन्द है। जहाँ तक उसकी ध्वनी का प्रभाव होता था, वहाँ तक शारीरिक-मानसिक-दैविक एवं भौतिक प्रकोप भी हट जाते थे।

रोगनाशक है शंखध्वनि

वैज्ञानिक अनुसंधानों से अब यह सिद्ध हो गया है कि शंख और घंटे की ध्वनि से रोग के कीटाणुओं का नाश होता है। प्रति सेकेण्ड २७ घनफुट शक्ति को जोर से बजाये गये शंख की ध्वनि २०० फुट की दूरी के बैक्टीरिया को नष्ट कर डालती है। शंख ध्वनि से हैजा, मलेरिया आदि रोगों के कीटाणु भी नष्ट होते हैं। मिरगी, मूर्च्छा, कंठ माला और कुष्ट रोगियों के अंदर शंख ध्वनि से रोगनाशक प्रतिक्रिया होती है। शिकागो के डॉ. वाईनेन का दावा है कि अब तक वे तेरह सौ बहरे रोगियों को शंख ध्वनि से ठीक कर चुके हैं। **अफ्रीका में जहरीले सर्प के काटने पर घंटा बजाकर इलाज किया जाता है।** मास्को की एक अदालत ने तीन वैज्ञानिकों की समिति

घंटा ध्वनि परीक्षण के लिये गठित की जिसने सात दिनों तक परीक्षण के बाद घोषित किया कि **घंटा ध्वनि से तपेदिक रोग ठीक होता है।** तपेदिक के अतिरिक्त इससे कई अन्य शारीरिक कष्ट भी दूर होते हैं तथा मानसिक उत्कर्ष भी होता है। **मास्को के एक सेनिटोरियम में विगत कई वर्षों से तपेदिक के इलाज के लिये घंटा ध्वनि का प्रयोग किया** जा रहा है। साभार प्रस्तुति-दीक्षान्त ठाकुर, विश्वमित्र, कलकत्ता (१६.४.१९९७)

आज के वैज्ञानिक युग में तरह-तरह के ध्वनि प्रसारण यंत्रों के चलने से ध्वनि प्रदूषण भी होने लगा है जिससे इन धर्म यंत्रों की ध्वनियों का प्रभाव कम हो गया है। फिर भी यदि भक्ति-भावनापूर्वक प्रयोग का जाये तो सफलतायें आज भी मिलती है/मिल सकती है। कहीं-कहीं सुरक्षा की दृष्टि से घंटा मंदिर जी के भीतर लगा रहता है।

घंटा बजाने के बाद ॐ जय-जय-जय। निस्सही, निस्सही, निस्सही। नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु मध्यम स्वर से (न अधिक जोर से, न अधिक धीरे से) बोलना चाहिये। मन्दिर जी में प्रवेश करते समय "**निस्सही**" क्यों बोला जाता है? जिस प्रकार से मनुष्य अपने घर-परिवार की टोलियों की टोलियाँ बनाकर तीर्थयात्राओं को जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से देवगति के चतुर्निकाय के देवतागण भी अदृश्य होकर तीर्थयात्राओं को आते हैं और जिन-मन्दिरों की भक्ति-पूजा आदि करके पुण्योपार्जन करते हैं एवं जो मूर्तियाँ उनके मन भा जाती हैं, जो स्थान उन्हें आकर्षित करते हैं, वहाँ पर वे देवतागण अतिशय भी दिखलाते हैं। अतः '**निस्सही**' शब्द इसलिये बोला जाता है कि वहाँ पर पहले से आये, मौन भक्ति-पूजा में मग्न अदृश्य देवतागण यदि हों तो उनकी भक्ति पूजा में विघ्न न हो। वे देवतागण '**निस्सही**' शब्द सुनकर व्यवस्थित हो जाते हैं एवं आपको भी दर्शन-पूजन-भक्ति के लिये बहुमान, स्थान देते हैं। इसी के साथ क्षेत्रीय देवतागण क्षेत्रपालादिक से मन्दिर जी में प्रवेश की अनुमतिसूचक यह शब्द उच्चारण किया जाता है।

कुछ लोग 'निस्सही' शब्द का अर्थ अशुभ रागादि विकल्पों को मंदिर जी के बाहर छोड़ना मानते हैं। परन्तु जब हम लोग घर से मन्दिर जी की ओर चलते हैं, तभी हमारे अशुभ रागादि विकल्प परिणाम छूट जाते हैं, छूट जाने चाहिये। तब फिर '**निस्सही**' शब्द के अशुभ रागादि विकल्प छूटते हैं ऐसी युक्ति नहीं लगती है।

मूल बात, प्रामाणिक व्याख्या यह है कि हमारे चरणानुयोग-मूलाचार आदि ग्रन्थों में आचार्यों ने साधुओं एवं श्रावकों के लिये भी तेरह प्रकार की क्रियाएँ बतलाई है। **पंचपरमेष्ठी को नमस्कार, छह आवश्यक, निस्सही एवं आस्सही इस प्रकार कुल तेरह क्रियाएँ लिखी हैं।** इसमें निस्सही का प्रयोग तो मन्दिर जी में नगर, ग्राम, घर, श्मशान आदि में प्रवेश करने के पूर्व, किसी वृक्ष के नीचे बैठने, लघुशंका, दीर्घशंका करने से पूर्व प्रयोग किया जाता है एवं उस स्थान को छोड़ते हैं या बाहर निकलते हैं तब 'आस्सही-आस्सही-आस्सही' तीन बार बोला जाता है। अतः इससे सिद्ध है कि 'निस्सही' शब्द का प्रयोग मात्र अशुभ रागादि छोड़ने के लिये नहीं किया जाता,

बल्कि क्षेत्रपालादि से क्षेत्र प्रवेश अनुमति के लिये ही किया जाता है। यदि हमने 'निस्सही' से अशुभ विकल्प छोड़े हैं तो 'आस्सही' से क्या हम अशुभ विकल्प ग्रहण करेंगे?

'निस्सही' शब्द से ही हमारे साधर्मी बन्धु भी यदि दर्शन-पूजन-भक्ति करते हुए बीच में खड़े हों तो उन्हें भी संकेत मिल जाता है कि कोई दर्शनार्थी पीछे दर्शन करने आया है। वह भी आपको स्थान देगा/देना चाहिये। इसी के साथ पहले से जो व्यक्ति दर्शन करता रहता है, वह भय आदि से बच जायेगा। क्योंकि मौन-पूर्वक पीछे से दर्शन करने से कभी-कभी आगे वाले पर उसकी परछाईं पड़ने से वह भयभीत हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये हमारे आचार्यों ने 'निस्सही' आदि शब्दों का विधान बनाया है। पुनः णमोकार मन्त्र, उसका माहात्म्य एवं चत्तारि दण्डक, इस प्रकार भक्ति-भावपूर्वक पढ़ना चाहिये। जैसे-

णमो अरिहंताणं-	अरिहंतों को नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं-	सिद्धों को नमस्कार हो।
णमो आइरियाणं-	आचार्यों को नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं-	उपाध्यायों को नमस्कार हो।
णमो लोए-सव्व-साहूणं-	लोक(विश्व) के सभी साधुओं को नमस्कार हो।

एसो पञ्च णमोकारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

पद्यानुवाद- **यह पंचनमस्कार मंत्र, नाशता सब पापों को**
मंगलोंमें सबसे पहला, मंगल कहलाता वो।

अर्थ- यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और संसार के सभी मंगलों में पहला मंगल है। तभी तो पुष्पदन्त भूतबली आचार्य जी ने षट्खण्डागम ग्रन्थ में मंगलाचरण के रूप में णमोकार मंत्र को लिखा है।

चत्तारि दण्डक

चत्तारि मंगलं-	मंगल चार होते हैं।
अरिहंता मंगलं-	अरिहंत मंगल हैं।
सिद्धा मंगलं-	सिद्ध मंगल हैं।
साहू मंगलं-	साधु मंगल हैं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं-	केवली (केवलज्ञानी) के द्वारा कहा गया धर्म मंगल है।

चत्तारि लोगुत्तमा	लोक में चार उत्तम हैं।
अरिहंता लोगुत्तमा-	लोक में अरिहंत उत्तम हैं।
सिद्धा लोगुत्तमा-	लोक में सिद्ध उत्तम हैं।
साहू लोगुत्तमा-	लोक में साधु उत्तम हैं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा-	केवली के द्वारा कहा गया धर्म उत्तम है।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-	मैं चार की शरण को प्राप्त होता हूँ।
अरिहंता सरणं पव्वज्जामि-	अरिहंतों की शरण को प्राप्त होता हूँ।
सिद्धा सरणं पव्वज्जामि-	सिद्धों की शरण को प्राप्त होता हूँ।
साहू सरणं पव्वज्जामि-	साधुओं की शरण को प्राप्त होता हूँ।
केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि-	केवली के द्वारा कहे गये धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

इस प्रकार हाथ जोड़कर बोलते हुए वेदी के सामने रखी हुई बेंच-चौकी आदि जिस पर द्रव्य सामग्री चढ़ाते हैं, हाथ या डिब्बी में लाये हुए चावल आदि द्रव्य को निम्न श्लोक बोलते हुए मन्त्र को उच्चारण करते हुए चढ़ायें-

उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकैः, चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवा कुलेः जिन गृहे जिननाथ-महं-यजे।।

पाँच पुंज (ढेरी) में "**ॐ ह्रीं श्री गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाण कल्याणक प्राप्तये जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा**" **अथवा "ॐ ह्रीं श्री अरिहंत-सिद्ध आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।**" इस प्रकार मंत्र बोलते हुए चढ़ाना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि मन्दिर जी की प्रतिमा अरिहंतों या सिद्धों की है फिर मंत्र में आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु को सम्मिलित क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि जब इन प्रतिमाओं के पंचकल्याणक होते हैं। तब दीक्षा (तप) कल्याणक में, इनमें साधु-उपाध्याय एवं आचार्य परमेष्ठी की दीक्षा के मंत्रों के संस्कार किये जाते हैं। पुनः केवल ज्ञान कल्याणक में अरिहंतों के गुण एवं मोक्षकल्याणक में सिद्धों के गुण रूप मंत्रों के संस्कार किये जाते हैं। अतः पंचपरमेष्ठी की प्रतीक रूप प्रतिमा को इस तरह अर्घ्य चढ़ाने में कोई दोष नहीं है। अर्घ कहते हैं मूल्य को एवं अर्घ्य का अर्थ है मूल्यवान या बहुत कीमती होता है। परन्तु पूजा मंत्रों में अर्घ्य का मतलब जल फलादि आठों द्रव्यों का मिश्रण है। **यथार्थ में जिन जल फलादि को हमने परिश्रम या धन आदि खर्च करके अपने स्वामित्व भाव से जोड़ा है। उस सामग्री को मूल्यवान मानते हुए अपने पूज्यों को समर्पण करते हुए उसके अधिकार-ममत्व-अपनत्व भाव का त्याग करना ही अर्घ्य है।**

कोई-कोई चावल का ॐकार, स्वास्तिक, ह्रीं श्री या चन्द्राकार सिद्ध शिला भी बनाते हैं।

इसमें भी कोई दोष नहीं है। **सामग्री को विनय से चढ़ाना चाहिये- फेंकना या फैलाकर नहीं चढ़ाना चाहिये। वेदी के सामने रुपये-पैसे नहीं चढ़ाना चाहिये यदि रुपये-पैसे चढ़ाना ही है तो मन्दिर जी में रखी गोलक में चढ़ाना चाहिये।** क्योंकि गोलक के पैसों से मंदिर जी की सुरक्षा, उपकरण आदि की व्यवस्था होती है।

चावल आदि चढ़ाने के बाद नमस्कार करना चाहिये। पुरुषों यानि मनुष्यों को शास्त्रोक्त विधि से पंचांग यानि दोनों पैरों के घुटने, दोनों हाथों की कुहनियाँ सहित दोनों हाथों को नारियल के समान जोड़कर धरती पर रखकर उस नारियल के समान बद्ध हाथों पर अपना सिर रखना एवं अष्टांग यानि सर्वांग से जमीन पर पट्ट लेटकर नमस्कार करना चाहिये। साधु, आर्यिका, महिलायें, बच्चियों को गवासन यानि नीचे जमीन पर घुटने टेकते ही घुटनों को बायें हाथ की तरफ तथा पैरों के पंजों को दायें हाथ की तरफ ले जायें, जिस तरह गाय तिरछा बैठती है। पुनः दोनों हाथों की कुहनियाँ जमीन से स्पर्श करती हो तथा दोनों हथेलियाँ नारियल के समान आकृति में होकर जमीन छू रही हो और उसी पर अपना सिर रखकर नमस्कार करना चाहिये। **नमस्कारात्मक मुद्राओं का प्रभाव भी हमारे मन-मस्तिष्क एवं शरीर पर पड़ता है।** शरीर की बनावट एवं वस्त्रों के पहनाव आदि से स्त्रियों एवं पुरुषों की नमस्कार मुद्राओं में अन्तर आ जाता है। सही तरीके से नमस्कार मुद्रा से प्रतिदिन दर्शन करने पर परिणामों की विशुद्धि में अवश्य ही प्रभाव पड़ता है।

नमस्कार करते समय भी हमें स्तुति आदि बोलते रहना चाहिये एवं जिनेन्द्र देव के विभिन्न विशेषणों को उच्चारण करते हुए। जैसे - 'हे सर्वज्ञ! वीतराग!! हितोपदेशी!!! जन्म जरा-मरण आदि अठारह दोषों से रहित। अतिशय आदि छियालीस गुणों से सहित, अरिहंत परमेष्ठी आपको हमारा अनन्तों-अनन्तों बार नमस्कार हो।' ऐसा बोलते हुए कम से कम तीन बार नमस्कार मुद्रा में नमस्कार करना चाहिये। **बैठकर यथायोग्य नमस्कार करने से मानसिक तनाव दूर होता है,** विनय गुण प्रगट होता है, पूज्यों के प्रति आदर, बहुमान एवं समर्पण भाव झलकता है तथा **'वन्दे तद्‌गुण लब्धये' नमस्कार करने से भगवान जैसे ही वीतरागता आदि गुणों की प्राप्ति हो, ऐसी भावना करते हुए नमस्कार करना चाहिये।** छोटे बच्चों को नमस्कार कराते समय श्रद्धा हो, बुद्धि हो, विवेक हो, सदाचार हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, आदि बोलना सिखा देना चाहिये।

आज बस इतना ही...

बोलो महावीर भगवान की.........

श्रीमत्-पवित्र-मकलंक-मनन्त-कल्पम्,
स्वायं भुवं सकल मंगल-मादि तीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानाम्,
त्रैलोक्य-भूषण-महं शरणं प्रपद्ये।।

जय बोलो १००८ श्री अरहंत परमेष्ठी भगवान की......
शारदे नमस्कार करता हूँ बार-बार....
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की......
जय बोलो आचार्य शिरोमणी श्री धर्मसागर जी महाराज की.....
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की........

कल हमने सुना था कि हम मंदिर जी के अन्दर कैसे प्रवेश करें? कैसे सामग्री चढ़ायें? कैसे नमस्कार करें? आदि-आदि....।

आज हम चर्चा करेंगे कि नमस्कार करने के बाद आगे क्या, कैसे करना है? नमस्कार करने का बाद प्रायः सभी लोग गन्धोदक लेते हैं।

गंधोदक का महत्त्व

क्या आपको मालूम है कि गंधोदक कहाँ, कैसे और क्यों लगाते हैं? प्रायः प्रतिदिन की भाँति आँखों, मस्तक, गला आदि पर गंधोदक लगाते हैं। लेकिन गंधोदक लगाते समय निम्न श्लोक में से कोई एक या तीनों अवश्य बोलना चाहिए-

निर्मलं निर्मली करणं, पवित्रं पाप नाशनं।
जिन गन्धोदकं वन्दे, अष्टकर्म विनाशनं।।

अथवा

निर्मल से निर्मल अति, श्री जिन का अभिषेक।
रोग हरे सब सुख करे, काटे कर्म अशेष।

अथवा

मुक्ति श्री वनिता करोदक-मिदं पुण्यां-करोत्पादकम्।
नागेन्द्र त्रिदशेन्द्र चक्र पदवी, राज्याभिषेकोदकम्।।

सम्यग्ज्ञान चरित्र दर्शनलता, संवृद्धि सम्पादकम्।
कीर्ति श्री जय साधकं तव जिन! स्नानस्य-गन्धोदकम्।।

जिनाभिषेक का महत्त्व जिनसेनाचार्य देव ने आदि पुराण ग्रन्थ में निम्न प्रकार से लिखा है-

माननीय मुनीन्द्राणां जगतामेक पावनी।
साव्याद्-गन्धाम्बु-धारास्मान् या स्म व्योमाप-गायते।। (१३/१९५)

जो मुनीन्द्रों के द्वारा भी सम्माननीय है तथा संसार को पवित्रता प्रदान करने में अनुपम-अद्वितीय है, वह आकाश गंगा के समान प्रतीत होने वाली गन्धाम्बुधारा (अभिषेक) हम सबका कल्याण करे।

जरा सोचने और समझने की बात है कि हमारे व्यवहारिक जीवन के उपयोग में आने वाला साधारण जल भी हमारे द्वारा उच्चारित किये गये शांति मंत्रों से तथा जिन प्रतिमा को पंचकल्याण के समय अंकन्यास विधि से एवं '**सूर्यमंत्र**' से प्राण प्रतिष्ठित की गई थी, उनसे मन्त्रित हो जाता है। क्योंकि पाषाण प्रतिमाओं में भी धातुओं के अंश अवश्य ही होते हैं और धातुएँ विद्युत की सुचालक होती हैं। मारबल के पाषाण में दूध से दही जमाने (बनाने) की शक्ति है। दक्षिण भारत में आज भी कई मूर्तियाँ ऐसी हैं, जिनके अभिषेक जल के प्रयोग से सर्प विष भी उतर जाता है।

प्रतिमाओं में "सूर्यमंत्र" देने का अधिकार दिगम्बर साधु को ही है। जिस प्रकार अखिल विश्व को प्रकाश देने वाला सूर्य अखण्ड शक्ति का स्रोत है। **आज का आधुनिक विज्ञान सूर्य ऊर्जा से कई यंत्रों को संचालित कर रहा है। अत: "सूर्यमंत्र' को साधन रूप सिद्धि प्राप्त करने वाले कुशल वैज्ञानिक हमारे दिगम्बर साधु ही होते हैं।** जिस मूर्ति का 'सूर्यमंत्र' संयमशील, दृढ़ चरित्र साधु द्वारा दिया गया होगा, वह मूर्ति उतनी ही आकर्षक, चमत्कारी एवं प्रभावकारी होती है।

जल विद्युत का सुचालक है, सार्वभौमिक द्रव्य है, हर जगह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। अत: जब यह जल जिन प्रतिमा पर अभिषिक्त होता है, तब मूर्ति के चारों ओर प्रवाहित होने वाला 'सूर्यमंत्र' का तेज-ऊर्जा उससे यह जल भी संस्कारित (चार्ज) होकर असाध्य रोगों को दूर करने में समर्थ हो जाता है। मैनासुन्दरी ने इसी गन्धोदक के माध्यम से अपने पति श्रीपाल सहित सात सौ कुष्ठियों का कुष्ट रोग दूर कर दिया था।

लेकिन पुन: एक प्रश्न उठता है कि जब यह गन्धोदक असाध्य रोगादि को दूर करने में समर्थ है, इससे हमारे जीवन में होने वाली मानसिक-दैहिक-दैविक व्याधियाँ दूर क्यों नहीं होती हैं? आपका प्रश्न बहुत ही उत्तम है। आपने सुना होगा कि पारसमणि यदि लोहे से छू जाए तो लोहा, सोना बन जाता है, परन्तु सोना बनने वाले लोहे के साथ एक शर्त यह भी है कि

लोहा जंग लगा हुआ नहीं होना चाहिए। क्योंकि जंग लगे लोहे को पारसमणि से कितना ही छुआओ, वह लोहा सोना नहीं बन सकता है। ठीक उसी प्रकार से जिन का मन में संसार कि विषय-कषाय रूपी जंग लगी हो, उस शरीर को कितना ही गन्धोदक में स्नान कराओ, वह निरोग नहीं हो सकता है। अतः गन्धोदक के प्रभाव को देखने के लिए पहले उसकी आस्था होना तो जरूरी है, किन्तु विषय-कषायों से उदासीनता-संयम-त्याग भी जरूरी है।

कुछ लोग विवाद या प्रश्न करते हैं कि गन्धोदक को उत्तमांग (मस्तक-गला तथा नाभि से ऊपर) ही लगाना चाहिए। जिस प्रकार औषधि, खाने की खाई जाती है लगाने की लगाई जाती है। ठीक उसी प्रकार से रोगग्रस्त अवस्था में गन्धोदक को सर्वांग में लगाने से कोई विरोध नहीं आता है क्योंकि मैनासुन्दरी ने पति सहित सात सौ कुष्टियों पर गन्धोदक छिटका था। तब क्या गन्धोदक गलित कुष्टों के घावों पर नहीं लगा? कहा भी है-

"जिण चरण-कमल-गंधोदएण
तणु सिंचवि कलिमलु हणि उजेण।
संसार महाभय णासठाइ
पवि हियई जेण सुह-भावणाई।।"

अर्थात्- श्री जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों का गन्धोदक लेकर जिसने अपने शरीर को सिंचित किया, उसने कलि-पाप मल का नाश करके, पवित्र हृदय में सुख की भावना को प्राप्त कर लिया। अतः इस विषय में भी हमें विवाद नहीं करना चाहिए।

तिलक क्यों?

"तिलक, भारतीय संस्कृति की सभ्यता की निशानी है।" तिलक देखकर ही व्यक्ति बिना पूछे ही उसे आस्तिक-धार्मिक समझता है। व्यवहार जगत में भी तिलक मंगलता का प्रतीक माना गया है। रक्षाबन्धन, दीपावली आदि पर्वों पर एवं मेहमान होने पर, परदेश या युद्धभूमि में जाने से पूर्व तिलक का महत्त्व है। तिलक मस्तक पर लगाया जाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि आपत्ति-विपत्ति में ठण्डे दिमाग से काम लें। **व्यक्ति के मस्तक के ठीक बीचों-बीच कुछ ऐसी नसें, आज्ञा चक्र में होती है जिन्हें दबाने से शरीर में, मन में कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। अतः मुख्यतः तिलक मस्तक पर लगाते हैं।** पूजा विधि में नव स्थानों पर तिलक लगाया जाता है। तिलक बनाने में मुख्यतः चन्दन-केशर के साथ कपुर घिसकर प्रयोग किया जाता है। तिलक मस्तक पर लगते ही मस्तक का उपयोग बदलने लगता है, ध्यान एकाग्र होने लगता है। **नारी को चन्दन-केशर की बिन्दी रूप तिलक एवं मनुष्य को मेरु के समान लम्बा तिलक लगाना चाहिए।**

तंत्र विज्ञान के अनुसार तिलक लगे व्यक्ति से राजा-मंत्री, जज आदि पढ़े-लिखे उच्चस्तर के लोग भी प्रभावित होते हैं एवं उनके सोचे अनुसार कार्य भी कर देते हैं। अतः तिलक भी प्रतिदिन लगाना चाहिए।

आज के व्यक्ति तिलक लगाने में शर्म करते हैं या जिसने तिलक लगा रखा है, उसकी मखौल-मजाक उड़ाते हैं कि लो! ये आ गये तिलकधारी! पण्डित! पुजारी!! जनेऊधारी आदि-आदि। **अतः आप स्वयं सोचें कि ऐसे लोगों के जीवन में जब धार्मिक चिन्हों की उपेक्षा-अवहेलना होती है, तब क्या ये स्वयं इस पवित्र धर्म की आराधना कर पायेंगे?** कोई तिलक लगाकर, जनेऊ पहनकर गलत काम करे तो गलती तिलक, जनेऊ की तो नहीं हो जायेगी? कोई दीपक लेकर कुँये में गिरे तो गलती किसकी? अतः तिलक लगाने में यदि स्वयं को शर्म लगे तो तिलक लगाने वाले का मखौल नहीं उड़ाना चाहिए। किन्तु स्वयं भी तिलक लगाकर धार्मिकता से गौरान्वित होना चाहिए।

कुछ लोग तिलक की, जनेऊ की इसलिए उपेक्षा करते हैं कि तिलक लगाकर, जनेऊ पहनकर धार्मिकता को दिखाने से क्या लाभ? धर्म दिखावे का नहीं, अन्तरंग (मन) साफ होना चाहिए। **हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जब आपको धार्मिक चिन्हों को ही धारण करने में ग्लानि है, तब आपका मन साफ कैसे हुआ?** जिसे खाकी वर्दी पुलिस की, गहरे हरे रंग की वर्दी मिलिट्री की, काले रंग का कोट वकील का पहनने में शर्म-संकोच होगा, क्या वह राष्ट्र-देश-प्रान्त के कानून की रक्षा कर सकेगा? आप स्वयं सोचें-विचारें?

परिक्रमा क्यों?

गन्धोदक-तिलक लगाने के बाद वेदी की तीन प्रदक्षिणा (प्ररिक्रमा) लगानी चाहिए। जहाँ परिक्रमा नहीं हो वहाँ विकल्प नहीं करना चाहिए। ये तीन प्रदक्षिणा जन्म-जरा-मृत्यु के विनाश हेतु तथा मन-वचन-काय से भक्ति की प्रतीक रूप, बायें हाथ से दायें हाथ की तरफ लगायी जाती है क्योंकि **"आत्मनः प्रकृष्टं दक्षिणीकृत्य अयनं-गमनमिति प्रदक्षिणा" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो गुणों में श्रेष्ठ हो, उन्हें अपने दक्षिण-पार्श्व(दाहिने हाथ की ओर) रखते हुए जो गमन किया जाये, वही 'प्रदक्षिणा' कहलाती है।** यह एक व्यवहारिक नियम है कि प्रकृति के कृत्रिम-अकृत्रिम यंत्र जैसे घड़ी, पंखा, नक्षत्रों का गमन आदि दाहिनी ओर से ही होता है। इनका बायीं ओर चलना अशुभ है। **शादी की भँवरें भी मंगलता का सूचक है, दायीं ओर से ही लगायी जाती है। लोक व्यवहार में पुरुष को उत्तम मानने के कारण से किसी भी विशेष कार्य में स्त्री को बायीं ओर रखते हैं और पुरुष को स्त्रियों के दाहिनी ओर खड़ा करते हैं।** इसलिए ही सम्भवतः

लोक व्यवहार में नारी को 'वामांगी' कहा गया है। मंदिर जी भी समवशरण का प्रतीक माना है। अतः चारों दिशाओं में विद्यमान भगवान की छवि अवलोकन करने की भावना परिक्रमा करते समय होनी चाहिए। इस प्रकार परिक्रमा करते समय भी कोई स्तुति, स्तोत्र, पाठ आदि बोलते रहना चाहिए।

तीन प्रदक्षिणा देने के बाद पुनः वेदी के एक ओर खड़े होकर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिए। बहुत से व्यक्ति बहुत जल्दी णमोकार मंत्र पढ़कर ढोक लगाकर घर चले जाते हैं और इतने में ही देव-दर्शन की विधि को पूरा समझ लेते हैं। क्या आपको मालूम है कि **नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ने में २७ श्वांसोच्छवास का समय लगता है? इतने समय में ही नौ बार णमोकार पढ़ना चाहिये, तभी उस मंत्र पढ़ने का फल मिल सकता है।**

भोगों के भिखारी

कई-कई लोग मन्दिर जी में बिल्कुल मौनपूर्वक आते हैं एवं नमस्कार-परिक्रमा आदि चुपचाप लगाकर बाहर चले जाते हैं। न कोई भक्ति, न कोई स्तुति। इस प्रकार की प्रक्रिया देखकर ऐसा लगता है कि-

धीरे से दर्शन करना, प्रभो! कहीं जाग न जायें।
कल हम धोखा देके गये थे, आज भी धोखा देने आये हैं।

जैसे कि उनके मन में चोर घुसा हो, आहट होने पर भगवान के जागने की सम्भावनायें हैं। पहले कई बार हम भगवान को धोखा दे करके गये। आज भी धोखा से दर्शन करने आये हैं। भक्त को डर है कि कहीं भगवान जाग गये तो हमसे कहीं कुछ माँग न बैठें। क्योंकि जो स्वयं मंदिर जी में भगवान से माँगने आया हो, वह मंदिर जी में भगवान को क्या दे सकता है?

भूले से आज मैं मन्दिर आया हूँ,
ये न समझना कुछ त्यागने आया हूँ।
मैं तो दीवाना हूँ भोगों का जग में,
यहाँ भी भोगों को माँगने आया हूँ।।

कई लोग भगवान के सामने पंचेन्द्रिय के भोगों के भिखारी बनकर आये। भगवान से क्या नहीं मांगा? जो नहीं माँगना चाहिए था, जैसे- धन-स्त्री-पुत्र, कारखाना, नौकरी, व्यापार, हार-जीत या यूँ कहें कि पाँच पापों की सामग्री। पर कभी हम लोगों ने विचार किया कि हम किनसे क्या माँग रहे हैं? जो पाँच पापों के त्यागी हमेशा के लिए हैं, उन्हीं से हम पाँच पापों की सामग्री माँग रहे हैं, तुच्छ इन्द्रियों की सम्पदा याच रहे हैं। अरे! माँगना ही है तो कुछ शाश्वत माँगो, जो कभी हमसे अलग न हो, नष्ट नहीं हो-

इन्द्रादिक पदवी न चाहूँ, विषयों में नाहि लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै परमातम निज पद दीजै।।

अतः भगवान के सामने कभी तुच्छ भोगों के भिखारी मत बनो। विराट सम्पदा के स्वामी बनो। **भगवान के सामने भोगों के भिखारी बनकर मत आईये। बल्कि भोगों के त्यागी बनकर, उच्चकोटि के दाता बनकर जाईये, तभी देव-दर्शन का सही लाभ हो सकता है।**

प्रशस्तिकरण

नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ने के बाद अपनी दृष्टि को श्री जिन प्रतिमा जी के चरणों में एकाग्र करके विचारना चाहिए कि जिन मूर्ति के श्री चरणों से दिव्य ज्योति रूप किरणें उत्पन्न होकर, हमारे हृदय कमल को आकर छू रहीं हैं जिससे हमारा हृदय कमल विकसित हो रहा है, खिल रहा है। पुनः भगवान के आदर्श पवित्र जीवन सूत्रों को याद करो कि हे प्रभो! आपने पाँचों पापों को पूर्णतः त्यागकर इस परम पावन पद को प्राप्त किया है, आप धन्य हैं आदि-आदि। पुनः दो-तीन बार उस मूर्ति को आप ऊपर से नीचे की ओर ध्यान से देखें! नीचे आसन पीठिका पर प्रशस्ति खुदी है।

लगभग ग्यारह-बारह सौ वर्ष पहले प्रतिमाओं पर प्रशस्ति-लेख नहीं खोदे जाते थे। मात्र बड़े-बड़े शिलाखण्डों पर गुफाओं में, दीवालों आदि पर शिला लेख उत्कीर्ण किये जाते थे। पुनः जिन प्रतिमाओं पर प्रशस्ति की पद्धति कब-कैसे प्रारम्भ हुई? इसका कोई शास्त्रोक्त उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी चिन्तन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि हजार वर्ष के लगभग दिगम्बर आचार्यों के संघ भेद जैसे- काष्ठा संघ, पुन्नाट संघ, मथुरा संघ, द्राविड संघ आदि-आदि। अतः इन संघ भेदों के विवाद से बचने के लिए मूल संघ नाम से प्रशस्ति को प्रतिमा पर उत्कीर्ण किया जाने लगा। **स्वस्ति श्री वीर निर्वाण सम्वत्..... श्री कुन्दकुन्दाचार्याम्नाये मूल संघे सरस्वती गच्छे बलात्कार गणे.....आदि सूर्यमंत्र प्रदाता आचार्य मुनि के साथ ही प्रतिष्ठाचार्य एवं मूर्ति निर्माता का नाम भी खुदा रहता है।**

प्राचीन शिलालेखों के अनुसार जब जैन धर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दो भेद हुए तब, 'मूल संघ' दिगम्बर जैनों का हुआ। क्योंकि बारह वर्ष का अकाल पड़ने से दिगम्बर साधुओं में से ही श्वेताम्बरधारी बने, अतः मूल संघ दिगम्बर धर्म का ही रहा। इसी मूल संघ की शुद्ध परम्परा को कुन्दकुन्दाचार्य देव ने सुरक्षित रखा, तभी से प्रशस्ति में कुन्दकुन्दाचार्य का नाम मूल संघ के साथ बहुमान हेतु उत्कीर्ण किया गया। **'सरस्वती गच्छे' का तात्पर्य है, सरस्वती यानि 'ज्ञान' गच्छ का मतलब है कि 'सात पीढ़ियाँ' अर्थात् जिनका ज्ञान सात पीढ़ियों से**

प्रामाणिक, विशुद्ध एवं निर्विवाद रहा हो। अतः कुन्दकुन्दाचार्य को जो ज्ञान प्राप्त था, वह ज्ञान भगवान महावीर, गौतम गणधर एवं अन्य श्रुत केवलियों की सात पीढ़ियों से निर्विवाद- सुरक्षित उपलब्ध हुआ था। इसकी प्रामाणिकता भी समयसार के मंगलाचरण में '**मिणमो सुय केवली भगवं**' से सिद्ध है। अतः तभी से '**सरस्वती गच्छे**' इस प्रकार से प्रमाणित करने के लिए लगाया गया है।

यह तो हमारी समझ में आ गई किन्तु प्रशस्ति में यह '**बलात्कार गणे**' क्यों लिखा है? यह हमारी समझ में नहीं आता। सुनों! इसके पीछे एक घटना है कि जब बारह वर्ष के अकाल से श्रमण संस्कृति के दो टुकड़े दिगम्बर-श्वेताम्बर रूप में हो गये। उसके कुछ समय बाद दोनों सम्प्रदाय के आचार्य गिरनार पर्वत की वन्दना हेतु पधारे। दिगम्बर मुनि संघ के नायक जगत प्रसिद्ध कुन्दकुन्दाचार्य थे एवं श्वेताम्बर संघ के स्थूलभद्राचार्य थे। तब इन दोनों संघों में पर्वत की वन्दना को लेकर कुछ विवाद हुआ कि हम पुराने हैं, बड़े हैं, सच्चे हैं। अतः सबसे पहले गिरनार पर्वत की वन्दना हम करेंगे। इस प्रकार के विवाद को सुलझाने के लिए एक तरीका खोजा गया कि इस पर्वत की अधिष्ठात्री अम्बिका देवी जिसे पहले कह देगी, वही पहले पुराना एवं सच्चा माना जायेगा और वह सबसे पहले पर्वत की वन्दना करेगा।

यह प्रस्ताव दोनों पक्षों को मान्य हुआ। सबसे पहले श्वेताम्बर आचार्य ने अम्बिका देवी को बुलवाने की अथक चेष्टा की, किन्तु अम्बिका देवी प्रगट नहीं हुयी और नाहीं कुछ हाँ या ना का जबाव दिया। लेकिन जब दिगम्बराचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने जोर देकर कहा कि सच बोल, कौन पहले के हैं? तब अम्बिका देवी प्रगट होकर आवाज देती है कि "**आद्य दिगम्बर- आदि दिगम्बर, सत्य पंथ निरग्रन्थ दिगम्बर!**" इस प्रकार जोर देकर जबरन (बलात्) बुलवाने से इस गण का नाम '**बलात्कार गण**' प्रसिद्ध हुआ। तभी से प्रशस्ति में यह शब्द भी उत्कीर्ण किया जाने लगा। तभी तो कहा कि-

संघ सहित श्री कुन्दकुन्द गुरु, वन्दन हेतु गये गिरनार।
वाद पर्‌यो तहँ संशयमति सों, साक्षी बदी अम्बिकाकार।।
सत्य पंथ निरग्रन्थ दिगम्बर, कही सुरी तहँ प्रगट पुकार।
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे विघन हरण मंगल करतार।।

इसी परम्परा का निर्वाह समन्तभद्राचार्य जैसे दिगम्बर गुरुओं ने किया है। देश-देश के राज्यों की राज्य सभाओं, वादशालाओं में जा-जाकर धर्म के सत्य स्वरूप को बलात् (जबर्दस्ती) प्रगट करके, जैन धर्म की प्रभावना की। शुभचन्द्राचार्य ने ज्ञानार्णव ग्रन्थ में लिखा है-

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे, सुसिद्धान्त सुविप्लवे।
अपृष्ठेऽपि वक्तव्यं, एतत्स्वरूप प्रकाशनं।।

यानि, जहाँ धर्म का ह्रास हो रहा हो, क्रिया नष्ट हो रही हो एवं सुसिद्धान्त यानि जैन सिद्धान्त शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ किया जा रहा हो, वहाँ बलात् (जबर्दस्ती) दूसरे के बिना पूछे ही बोलना चाहिए, बतलाना चाहिए कि धर्म, क्रिया एवं सिद्धान्त का यथार्थ स्वरूप यह है।

चिन्हकरण

इतनी प्रशस्ति पढ़ने के बाद उसी आसन के ठीक बीचोंबीच एक चिन्ह अंकित होता है। जिन तीर्थंकरों की प्रतिमा होगी, उन पर उन्हीं तीर्थंकरों का कोई एक चिन्ह होता है। अब प्रश्न उठता है कि इन तीर्थंकरों के चिन्ह क्यों होते हैं? इन चिन्हों का तीर्थंकरों के पूर्व भव से क्या कोई सम्बन्ध हो सकता है? जैसे- आदिनाथ का बैल से, पार्श्वनाथ का सर्प से, महावीर का सिंह से इसी प्रकार अन्य तीर्थंकरों के इन चिन्हों का निर्धारण कैसे, कब और कौन करता है? इत्यादि।

प्राय: सभी तीर्थंकरों का संस्थान समचतुस्र होने से उनकी पहचान नहीं हो सकती। केवल हुण्डापसर्पिणी काल के कारण आठ तीर्थंकर भिन्न रंग के एवं सोलह तीर्थंकर तपे सोने रंग के हुए, अन्यथा हमेशा चौबीसों तपे सोने के रंग के ही होते हैं। अत: **तीर्थंकरों की पहचान के लिए चिन्ह होते हैं। इन चिन्हों का तीर्थंकरों के पूर्व भव से कोई सम्बन्ध नहीं है।** क्योंकि कई तीर्थंकरों के चिन्ह साथिया, चन्द्रमा, वज्रदण्ड, कलश आदि हैं, इन चिन्हों में जीव पर्याय का कोई अस्तित्व नहीं होता। ये अचेतन, अजीव हैं। अत: इससे सिद्ध होता है कि इन चिन्हों का उन तीर्थंकरों की पूर्वपर्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।

संसार में जितने भी शरीरधारी प्राणी हैं, उन सभी के शरीर में कोई न कोई शुभ या अशुभ चिन्ह होते हैं, यह सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता पुरुष मानते हैं। जो शुभ चिन्ह होते हैं, शुभ फल देते हैं,अशुभ चिन्ह अशुभ फल देते हैं। ऐसा ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता पुरुष मानते हैं। अत: तीर्थंकरों जैसे महापुरुषों के जन्म से ही शरीर में एक हजार आठ शुभ चिन्ह होते हैं। जो चिन्ह उनके दाहिने पैर के अंगूठे में होता है, उस चिन्ह को जन्माभिषेक के समय सुमेरु पर्वत पर सौधर्मेन्द्र द्वारा घोषित किया जाता है। कहा भी है-

जम्मण काले जस्स दु दाहिण पायम्मि होई जो चिण्णा।
तं लक्खण पाउत्तं आगम सुत्तेसु जिण देहं।।

अत: इस प्रकार सिद्ध है कि तीर्थंकरों के चिन्ह क्यों, कब और कैसे रखे जाते हैं?

आज बस इतना ही......
बोलो महावीर भगवान की.......

सौम्याः सर्व-विकार भाव-रहिताः, शान्ति स्वरूपात्मकाः।
शुद्धध्यानमयाः प्रशान्त-वदनाः श्री प्रातिहार्यान्विताः।।
स्वात्मानन्द विकाशकाश्च सुभगाश्चैतन्य भावावहाः।
पञ्चानां परमेष्ठिनां हि कृतया, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।

जय बोलो पंच परमेष्ठी भगवान की.....
शारदे! शरद-सी शीतल.......
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की....
जय बोलो परम पूज्य गुरुवर्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज की....
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की......

कल आपने सुना था अभिषेक, तिलक, परिक्रमा, प्रशस्ति, चिन्हकरण आदि के बारे में। आज आप सुनेगें कि जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा आपसे क्या कह रही है?

जिन बिम्बोपदेश

आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति की ईश्वरीय आस्था बदल गई, लोगों ने आधुनिक धर्म के परिपालन हेतु घर में उसकी पूर्णतः व्यवस्था कर ली है। इसलिए कहना पड़ा कि-

भौतिकता के युग का देखो धर्म कि कितना सुन्दर है।
टी. वी. घर का चैत्यालय है नगर सिनेमा मंदिर है।।

यदि भूले से मंदिर जी आ भी गये तो भागते-भागते, पाँच-दस-पन्द्रह मिनट में दर्शन करके चल दिये, इसी में अपनी शान समझ ली और भगवान के ऊपर एहसान कि हे भगवन्! देख ले तू भी कि मैं इतने व्यस्त जीवन में भी तेरे दरबार में आता हूँ। लेकिन हम आपसे पूछना चाहते हैं कि आपने इतने समय में मंदिर आकर दर्शन करने में क्या उपलब्धि की? तब आप यही कह सकते हैं कि इतनी देर हमें शान्ति मिलती, जब तक हम मंदिर जी में रहते हैं। अब हम आपसे कहना चाहेंगे कि जो थोड़ी देर के लिये मिलती है, उसका नाम शान्ति नहीं है। **शान्ति का स्वरूप तो जीवन में एक बार प्रगट हो गया तो स्थायी हो जाता है।** यदि आपने थोड़ी देर के लिए शान्ति अनुभव मान भी लिया तो क्या? जो व्यक्ति चौबीसों घण्टे मानसिक पीड़ा-संकल्प-विकल्पों से गुजरता है, वह पीड़ा मंदिर जी में आकर थोड़ी बदली हुई लगेगी। लेकिन पाँच-दस-पंद्रह मिनट में तो कुछ भी नहीं हो सकता है, इतने समय में तो बाहर के संकल्प-विकल्पों को भी विश्रान्ति नहीं मिल पाती और पुनः बाहर निकलते ही संकल्प-विकल्प तीव्रता

से शुरु हो जाते हैं। आपके घर में बिजली की पंखा चौबीसों घंटे चलता रहे तो उसका आर्मेचर गर्म हो ही जाता है। जब आप पंखा बंद करते हैं तो थोड़ी देर तक तो पंखा बिना करेंट के पूर्व संस्कार से घूमता रहेगा। लेकिन आर्मेचर को ठण्डा होने के लिए कम से कम घण्टे भर का समय तो अवश्य चाहिए। अब हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जब हमारी बुद्धि-मन-विचार चौबीसों घंटे विषय-कषायों में घूम रहे हैं, चक्कर लगा रहे हैं, उन्हीं से संस्कारित हो रहे हैं। तब क्या हमारे पांच-दस-पंद्रह मिनट के मंदिर आने मात्र से उन विकारों की, विकल्पों की समाप्ति हो सकती है?

उन विकारों की समाप्ति के लिए, शुभ संस्कारों की जागृति के लिए कम से कम एक घंटे का समय हमें प्रतिदिन देना होगा। अन्यथा, जब हम भगवान के दर्शन कर रहे होंगे, माला जप रहे होंगे, तब हमें संसार के संकल्प-विकल्प ही सुनाई पड़ते हैं/दिखाई पड़े हैं। इसलिए अध्यात्म के अनुरागी अमृतचन्द्राचार्य जी ने जीवों के विकल्प समाप्ति हेतु निम्न कारिका कही है-

विरम कि-मपरेणाऽकार्य कोलाहलेन,
स्वय-मपि निभृतः सन् पश्य षण्मास मेकः।
हृदय सरसि पुन्सः पुद्गलाद् भिन्नधाम्नो,
ननु कि-मनुपलब्धिः भाति किञ्चोपलब्धिः।।३४।। (समयसार कलश)

हे भव्य! विराम ले, विराम ले, पर के (विषय-कषायों) के कोलाहल से विराम लेकर, तू स्वयं अपने में स्थिर होकर छह महीने तक अपने स्वरूप को देखने का अभ्यास कर। ऐसा करने से तुझे अपने हृदय सरोवर में पुद्गल तत्त्व से भिन्न, ज्ञान तेज से प्रकाशमान तेरी आत्मा तुझे दिखलाई पड़ेगी।

यथार्थ में जहाँ हमारे आचार्य प्रभो आवाज दे रहे हैं कि तू छह महीने तक विषय-कषायों के विकल्पों से विराम लेने की चेष्टा करते हुए अपने आप में स्थिर होने का पुरुषार्थ कर। यहाँ हमारे पास छह महीने क्या, छह घण्टे का भी समय नहीं है। छह घंटे क्या? आधा घंटे का समय भी निराकुलतापूर्ण नहीं है अपने लिए, आत्मोत्थान के लिए। फिर हम आत्म कल्याण के लिए क्या कल्पना, साधना कर सकते हैं?

आज तक हमने मंदिर में आकर, प्रभो के सामने खड़े होकर भी, प्रभो की आवाज नहीं सुनी। **परमात्मा के सामने खड़े होकर भी पापों की आवाज-कोलाहल सुनाई दिया। जब तक हमें भगवान के सामने खड़े होकर भी विषय कषायों का कोलाहल-आवाजें सुनाई देती रहेंगी, तब तक हमारा मंदिर जी आना सार्थक नहीं होगा।** अतः अब थोड़े समय के लिए संसार के इन विषय-कषायों की आवाजों को, पापों के कोलाहल को सुनना बंद करो! बन्द करो!! बन्द

करो!!। और अपने प्रभो! परमात्मा, ईश्वर, भगवान की आवाज को सुनो! तुम्हारा प्रभो तुम्हें पुकार रहा है। तुमसे कुछ कह रहा है। यदि तुम्हें उनकी आवाज सुनाई नहीं देती तो तुम उनकी ओर देखो, उनके स्वरूप को देखो! उनसे पूछो कि इस तरह हाथ पर हाथ रख पद्मासन में क्यों बैठे हो? निश्चल समपाद कायोत्सर्ग मुद्रा में क्यों खड़े हो?

तुम्हें उत्तर मिलेगा, अवश्य मिलेगा, पूछोगे तो जरूर मिलेगा। वे कह रहे है कि जैन धर्म में अरिहन्तों की प्रतिमाएँ दो ही मुद्राओं में मिलती है-एक पद्मासन दूसरी खड्गासन। ये दोनों ही आसन योग मुद्रा के प्रतीक हैं यानि इन मुद्राओं से, इन महापुरुषों ने मन-वचन-काय का सम्यक् प्रकार से निरोध कर लिया है या इनने मन-वचन-काय की कुटिलता को जीत लिया है, ऐसा प्रतिभासित हो रहा है। इनके अलावा अन्य मुद्राओं से अंहकार, कषाय-राग-द्वेष आदि प्रतिभाषित होते हैं। पद्मासन प्रतिमा के हाथ पर हाथ रखे हुए हैं जिससे भगवान का कृत्य कृत्यपना प्रकट हो रहा है। क्योंकि **"संसार में सबसे बड़ा व्यक्ति वही है जिसे कुछ भी करना बाकी न रहा हो।"** अर्थात् जिन्हें अपने हाथों से कोई भी कार्य करना शेष नहीं रहा हो। आशीर्वाद और श्राप से भी जिनके हाथ दूर हैं। वे हमसे कह रहे हैं कि-

जिस करनी से हम भये, अरिहंत सिद्ध महान।
वैसी करनी तुम करो, हम तुम एक समान।।

एक स्थान पर खड्गासन-कायोत्सर्ग मुद्रा होने से, जिनको संसार में परिभ्रमण करना बाकी नहीं रहा, कायोत्सर्ग मुद्रा से इस बात का संकेत मिल रहा है, क्योंकि संसार में भ्रमण करने के लिए पैरों के सहारे चलना पड़ता है जिससे पैरों के साथ भी आगे पीछे हो जाते हैं। परन्तु इनकी स्थिर मुद्रा पाप-पुण्य रूप संसार परिभ्रमण की यात्रा को पार कर गये हैं, ऐसा संकेत मिल रहा है।

इसके बाद थोड़ा ऊपर की ओर देखते हैं, प्रतिमा में छाती (वक्ष) पर चार पांखुड़ी का एक फूल-सा बना है। यह फूल क्या है? किस बात का प्रतिक है? सुनो! यह चिन्ह तीर्थंकरों के एक हजार आठ शुभ चिन्हों में से **श्रीवत्स** नाम का चिन्ह है। **श्री का अर्थ है लक्ष्मी एवं वत्स का अर्थ है पुत्र अर्थात् जिनको अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख एवं अनन्तवीर्य रूप अन्तरंग अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्ती हुई है एवं बहिरंग में भी समवशरण आदि लक्ष्मी से शोभायमान हैं, 'श्री वत्स' चिन्ह यानि लक्ष्मीपुत्र, नियम से तीर्थंकरों के होता है। अरिहंतों के होने का नियम नहीं है।** जैसे- भरत-बाहुबली की मूर्तियों पर श्रीवत्स चिन्ह नहीं होता। अतः इससे सिद्ध है कि श्रीवत्स चिन्ह तीर्थंकरों के नियम से होता है।

इसके बाद थोड़े ऊपर की ओर देखने से लगता है, **"छवि वीतरागी नगन मुद्रा 'दृष्टि नासा पै धरैं।'** मन्द मुस्कानयुक्त मुख, इसका अर्थ है कि जिनका हृदय कमल अन्तरंग ज्ञान

से सुशोभित है, खिला हुआ है। इस कारण से उनके मुख कमल पर भी वह निर्विकार मुस्कान झलक रही है। **नासाग्र दृष्टि होने का अर्थ है जिन्होंने अन्तरात्मा का दर्शन कर स्वरूप में लीन हो, "परमात्मा" का पावन पद प्राप्त कर लिया है। क्योंकि बहिरात्मा जीव के काम-क्रोध-मद-लोभ की जागृति होने पर उसकी आँखों-पलकों-भौहों में विकार अवश्य आता है।** लेकिन जिनके काम-क्रोध-मद-लोभ रूप विकार नष्ट हो गये हैं, जो बहिरात्मपने के भाव को छोड़कर, अन्तरात्मा के स्वरूप को प्राप्त होते हुए सकल परमात्मा रूप पद को प्राप्त कर गये हैं। उसी स्वरूप का अवलोकन कर रहे हैं। इसलिये उनकी नासाग्र दृष्टि है।

प्रतिमा के सिर पर जो गोल-गोल घुँघराले-घुँघराले छल्ले केश-बाल के रूप में बने हुए हैं। जानते हैं आप- ये क्या हैं? यह बाल या केश नहीं हैं, इन्हें केश नहीं कहते हैं। **उन्हें 'सीतायें' कहते हैं।** ये सीतायें उन्हीं महान आत्मा के होती हैं जिनके रागादि विकारों से रहित होकर, श्वांसोच्छावास का प्रवाह नासिका के छिद्रों से न होकर, स्वमेव बिना इच्छा के तालु के बाल की अनी के आठवें भाग प्रमाण, अति सूक्ष्म छिद्र से निकलता है। यानि नासिका के छेद से नहीं निकलकर तालु रन्ध्र या ब्रह्मरन्ध्र से निकलती हैं, यह पूर्ण संयमी के वायु का निरोध स्वमेव स्वाभाविक होता है, बाधापूर्वक नहीं होता है। **क्योंकि मस्तिष्क से ऊर्जा के नीचे की ओर प्रवाहित होना, भौतिक जगत में प्रवेश है। इससे सांसारिक सुख का अनुभव होता है। लेकिन काम-केन्द्र की ऊर्जा का ऊपर की ओर जाना अध्यात्म उन्नति का कारण है।** इससे आत्मिक सुख की अभिवृद्धि होती है।

शरीर विज्ञान के हिसाब से भी शुषुम्ना में ये गाँठें ब्रह्मरन्ध्र वायु के वेग-विशेष से खिलती है, यह मनुष्य के शरीर में होने वाली विद्युत की गति का परिवर्तन है। क्योंकि इस विद्युत के अधोगति यानि नीचे जाने से इन्द्रिय भोग आदि का सुख मिलता है एवं ऊर्ध्वगमन करने से वह अपनी धन-ऋण विद्युत के मिलने से ब्रह्मचर्य का प्रकाश होता है, जिससे शक्ति की वृद्धि तो होती ही है। लेकिन जीवन में स्वतंत्र स्थायी पूर्ण सुख मिलने लगता है। जिनकी शक्ति अपने में रमण करती है, उन्हीं को आचार्य, योगी या उर्ध्वरेतस् कहते हैं।

शरीर विज्ञान की प्रणाली से ही इस मस्तिष्क के चार मुख्य भाग हैं- १. प्रमस्तिष्क (cerebrum) २. अनुमस्तिष्क (cerebellum) ३. मज्जा सेतु (mons varolli) ४. शुषुम्ना (Medulla Oblongata)। इन चार भागों में बँटे होने पर भी हमारा मस्तिष्क एक गहरे विदर से दो गोलार्द्धों में बँटा हुआ है। लेकिन इस विदर के नीचे दोनों भाग तंत्रिका तन्तु द्वारा जुड़े हुये हैं। प्रथम प्रमस्तिष्क में अनेको गहरी सीतायें-वत् सिकुड़नें होती हैं अर्थात् बहुत सी लहरिकायें होती हैं जिनका व्यक्ति की बुद्धिमत्ता से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ये लहरिकायें या खाईयाँ या छल्ले जितनी अधिक मात्रा में होती हैं, मनुष्य उतना ही बुद्धिमान होता है। अतः इससे सिद्ध

है कि सिर के छल्ले वाल केश नहीं हैं। बल्कि योग साधना के माध्यम से प्राप्त की गई ऊर्जा के केन्द्र हैं। यही ऊर्जा केन्द्र प्रारम्भिक दशा में बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धियों के रूप में ज्ञान के संग्राहक भी होते हैं। आपने बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, दार्शनिकों के बालों को गौर से देखा होगा। उनके बालों में छल्ले या लहरियाँ आती हैं। यही धीरे-धीरे ज्ञान की परिपक्व दशा में मस्तिष्क को आवृत करती हैं और पूर्ण संयम साधना से "सीनायें" का रूप ले लेती हैं।

इसके बाद हम देखते हैं कि प्रतिमा के ऊपर तीन छत्र लगे हुये हैं। कहीं-कहीं छत्र उल्टे लगते हैं यानि सबसे छोटा नीचे एवं सबसे बड़ा ऊपर, जबकि **वास्तु शास्त्र के हिसाब से सबसे नीचे बड़ा एवं सबसे ऊपर छोटा छत्र लटकाना चाहिये, तभी उन छत्रों का प्रभाव होता है।** ये तीन छत्र भगवान के तीन लोक के स्वामी, अधिपति होने का संकेत देते हैं।

कहीं-कहीं प्रतिमा जी के ठीक मस्तक के पीछे गोल भामण्डल या तो धातु के बने टंगे होते हैं या रंग से बने होते हैं। **भामण्डल की आभा साक्षात् समवशरण में भगवान के पूर्ण निर्मल ज्ञान के विकास का सन्देश देती है कि अब इसके आगे विकास की कोई उम्मीद या गुंजाइश नहीं है।** आपने सुना होगा, पढ़ा होगा कि भगवान के समवशरण में जो भामण्डल होता है, उसमें भव्य जीव अपने सात भव (तीन आगे के, तीन पीछे के, एक वर्तमान) देख सकता है। क्या यह सम्भव है? हाँ, एकदम सम्भव है। आज के वैज्ञानिक युग में कम्प्यूटर की स्क्रीन पर, बटन दबाते ही पिछला लेखा-जोखा आ जाता है। आगामी भवों को पर्यायों के परमाणु भी इस भामण्डल की पकड़ में आ जाते हैं। अतः जब कोई भव्य जीव इस प्रकार से चिन्तन करे कि हमारा इस भव से पहला, दूसरा या तीसरा भव क्या था या क्या होगा या वर्तमान भव में क्या है? तो वह तुरन्त ही हिसाब लगाकर भामण्डल पर झलक जायेगा। यह प्रक्रिया ठीक वैसे ही है जैसे टी.वी. का चैनल बदलने के लिये रिमोट कण्ट्रोलर कार्य करता है। ठीक उसी प्रकार से भावनाओं के रिमोट से भामण्डल रूपी टी.वी. पर आपके भवरूपी चित्र दिखते हैं।

आपने सुना, पढ़ा होगा कि समवशरण में भगवान के ऊपर एक अशोक वृक्ष भी होता है। अतः समवशरण की प्रतीक रूपी वेदी में भी अशोक वृक्ष को रंग से बनवा देते हैं। क्या आप समझते हैं, अशोक वृक्ष क्या है और इसका महत्त्व क्या है? आचार्य प्रभो! आगम-शास्त्रों में लिखते हैं कि जिस वृक्ष के नीचे तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं या उन्हें केवल ज्ञान होता है, वही वृक्ष अशोक वृक्ष कहलाता है। यह अशोक वृक्ष भी इस संदेश का प्रतीक है कि जो भी भव्य जीव धर्म का आश्रय लेते हैं, वे शोक रहित हो जाते हैं।

आपने सुना, पढ़ा या चित्र में देखा होगा कि तीर्थंकर महावीर जंगल के एक रास्ते से निकल रहे थे। उन्हें एक चण्डकौशिक नाम के सर्प ने पैर में डस लिया। महावीर आशीर्वाद मुद्रा में खड़े रहे। सर्प ने देखा, मैंने आज तक जितने व्यक्तियों को काटा, लाल खून निकला

और हमारे काटते ही वे प्राणांत हो गये। लेकिन इस व्यक्ति को काटने से, इसके शरीर से सफेद खून निकला और यह व्यक्ति निश्चल खड़ा है। अवश्य ही कोई महापुरुष है। महावीर ने उसे उपदेश दिया। सर्प ने हिंसा करना छोड़ दिया।

कहने का तात्पर्य क्या है? तीर्थंकरों के शरीर में जन्म से ही हमारे समान लाल रक्त (खून) नहीं होता, दूध के समान श्वेत रक्त होता है! श्वेत रक्त होने का भी अपना एक वैज्ञानिक कारण है, विज्ञान कहता है कि मनुष्य के शरीर में लाल रुधिर कणिकायें एवं श्वेत रुधिर कणिकायें पाई जाती है। जिस व्यक्ति का हृदय काम-क्रोध-मद-लोभ, विषय-कषाय आदि हिंसाजन्य प्रवृत्ति, मांसाहारी भोजन से सहित है, उनमें लाल रुधिर कणिकाओं की मात्रा अधिक पाई जाती है। परन्तु जिनका हृदय प्रेम-करुणा-दया-वात्सल्य, पूजा-दान आदि की भावनाओं से भरा होगा, उनके रुधिर में श्वेत कणिकाओं की मात्रा अधिक होती है।

अतः जब थोड़ी सी दया, प्रेम, वात्सल्य से रुधिर में श्वेत रुधिर की कणिकायें अधिक बढ़ती है, तब जो सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों के प्रति वात्सल्य भावना-प्रेम-करुणा से भरा होगा, उसके समस्त शरीर में सफेद रुधिर हो जाये तो कौन-सा आश्चर्य है? क्योंकि सोलह कारण पूजा में आप पढ़ते हैं- "**वात्सल्य अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै।**" तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति बंध कराने में वात्सल्य को प्रमुख माना है। लोक व्यवहार में भी जब माता का हृदय अपने बच्चे के प्रति प्रेम वात्सल्य से भरा होता है तो उसके स्तन से दूध निकलता है, अन्यथा नहीं। जब थोड़े से वात्सल्य में माता के स्तन में सफेद दूध होता है, तब तीन लोक के जीवों से वात्सल्य रखने वाले के समस्त शरीर में दूध ही दूध हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है।

इस प्रकार वेदी के सामने बाजू में बैठकर या खड़े होकर भगवान की मूर्ति के साथ ही उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों को। जैसे- अहिंसा-संयम-तप आदि के बारे में भी विचार करना चाहिये और भावना करना चाहिये कि हे भगवन्! आप वीतरागी हैं और हम वित्तरागी (धन-सम्पदा के लालची) हैं। आपके समान अनुपम स्वरूप की उपलब्धि हमें भी हो। पुनः वेदी की प्रत्येक छोटी बड़ी प्रतिमाओं को एक-एक करके ध्यान से एकटक देखना, कौन से तीर्थंकर की मूर्ति है? पाषाण की है या धातु की, पूरी वेदी में कुल कितनी मूर्तियाँ हैं? छत्र-चंवर भामण्डल आदि उपकरणों से वेदी किस प्रकार सजी है, वेदी किस ढंग से बनी है आदि-आदि।

कई लोग वेदी के सामने खड़े होकर या बैठकर आँखें बन्द तो कर लेते हैं। लेकिन बन्द आँखों में उन्हें क्या दिखता है? **आप मंदिर जी में दर्शन करने आये हैं, देखने आये हैं, आँखें बन्द करने नहीं आये हैं। हाँ! प्रारम्भ में मंदिर जी में वेदियों की प्रत्येक मूर्ति के स्वरूप को गौर से देखो, न जाने किस मूर्ति का सूर्यमंत्र आपकी चेतना को छू जाये और आपके अन्दर सम्यक्त्व**

का कमल खिल जाये। अतः आप पहले तो मूर्ति को बड़े गौर से देखें, पुनः धीरे से आँखों को वन्द करके, मूर्ति के रूप को अपनी वन्द आँखों में देखने का प्रयत्न करें। पुनः आँखें खोलें और मूर्ति को देखें और पुनः आँखें वन्द करें। जब तक हृदय पटल पर मूर्ति का रूप अंकित नहीं हो जाता, तब तक आप प्रतिदिन इस प्रकार का अभ्यास करते चले जायें।

प्रारम्भ में आपके उपयोग की अस्थिरता के कारण मूर्ति या वेदी चलती या हिलती हुई आदि दिख सकती है। इस हलन-चलन देखने से घबड़ाने की जरूरत नहीं है। उस समय हमारे चंचल मन, अस्थिर बुद्धि के कारण ही ऐसा हो रहा है। जैसे-आपने शान्त पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा होगा, यदि पानी में थोड़ी सी तरंगे उठ जायें तो वह प्रतिबिम्ब हिलता-चलता दिखाई देता है। **टेलीविजन भी आप देखते हैं जब तक एण्टीना ठीक नहीं होता, तब तक चित्र, विचित्र प्रकार से हिलते हुये दिखाई देते हैं। ठीक उसी प्रकार से ही जब मन, बुद्धि स्थिरता से, उपयोग में विशुद्धि होगी तो हमें मूर्तियों की आकृतियाँ बिल्कुल ठीक साफ दिखाई देगी।** जिस दिन आपको मूर्ति का ज्यों का त्यों रूप आपकी वन्द आँखों से हृदय कमल में विराजमान होगा तो समझ लेना कि आपने जीवन में बहुत बड़ी उपलब्धि कर ली। फिर तो हमें यही कहना पड़ेगा कि-

दिल के आइने में है प्रभो! की तस्वीर।
थोड़ी गर्दन झुका ली और देख ली।।

इसी प्रकार से आप पहले अपने उपयोग को मंदिर जी में एक वेदी की एक मूर्ति से अपने चित्त को, बुद्धि को स्थिर करने का अभ्यास करें। पुनः मंदिर जी की हर वेदी एवं अन्य तीर्थ यात्राओं में बने मंदिरों की वेदियों, मूर्तियों को भी इसी तरह उपयोग में बाँध लें। जब भी आप टेन्शन में हों, कोई दर्द जोर कर रहा हो, अनिद्रा अर्थात् नींद नहीं आ रही हो। तब आप इन मंदिरों के दर्शन आँखें बन्द करके, ठीक उसी प्रकार से कीजिए, मानो कि हम स्वयं मंदिर जी में पहुँचकर साक्षात् प्रभो! के दर्शन कर रहे हैं। इस प्रकार आप एक क्रमबद्ध तरीके से बचपन से लेकर अभी तक आपने जिस किसी शहर या तीर्थयात्राओं में जितने मंदिरों के दर्शन किये हों, उन्हें फिल्म की तरह दुहराते-देखते चले जायें। फिर देखें कि आपका टेन्शन, दर्द, अनिद्रा कहाँ चली गई?

इस प्रकार करने से एक बात और मुख्य रूप से हमारे जीवन के लिये लाभप्रद होती है/होगा कि यदि हमारा इस प्रकार से चिन्तन का अभ्यास बन गया तो जीवन के अन्त में समाधि के समय बहुत ही अधिक काम में आयेगा। जैसे कोई अन्त समय मरण की तैयारी कर रहा हो तो स्वयं अपने पूर्वाभ्यास के उपयोग को जाग्रत करें और दूसरों से करावें। स्वयं कहे, देखो, तुमने सम्मेद शिखर जी की यात्रा की है, चन्द्र प्रभु भगवान के ललितकूट के चरणों का ध्यान करो। पार्श्वनाथ भगवान के स्वर्णभद्र कूट के चरणों का ध्यान करो। यदि इसी ध्यान उपयोग

में इस जीव का मरण हो गया तो सुनिश्चित समझो कि उसका मरण घर में नहीं हुआ बल्कि तीर्थराज सम्मेद शिखर से हुआ। **क्योंकि मरण में प्राण निकलना महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि किस उपयोग-ध्यान-चिन्तन से प्राण निकले, यह महत्त्वपूर्ण है।** इसी प्रकार से अन्य तीर्थों, मन्दिरों का ध्यान भी लगा सकते हैं।

शिखर-गुम्मज

आकाश की शक्ति अनन्त है, वह चारों तरफ असीम है। अतः हमारे द्वारा प्रेषित ध्वनि यथार्थ स्थान पर नहीं पहुँच पाती है। आपने एक प्रयोग देखा या किया होगा कि किसी मैदान या खेत में खड़े होकर, यदि किसी दूर खड़े हुए व्यक्ति को बुलाना है, तो दोनों हाथों को मुँह पर खड़ी अंजुली बनाकर आवाज देने से वह व्यक्ति जल्दी से आवाज को सुन लेता है। किसान बन्धु भी खेतों में काम करते हुए, अपनी आवाज को दूर तक पहुँचाने के लिए मुख या कान के पास अपने हाथ का सहारा जरूर लेते हैं। इससे सिद्ध है कि ध्वनि को बिखराव से रोकने के लिए हाथों का सहारा लिया जाता है।

ठीक उसी प्रकार से हमारे जो भाव-भाषादि मन्दिर जी में भक्ति आदि के माध्यम से प्रगट होती है, वह बाहर की ओर व्यवस्थित ढंग से प्रसारित हो। इसके साथ ही उस **ध्वनि को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में बाँधने के लिये एवं आवाज में शक्ति ऊर्जा उत्पन्न करने के लिये शिखर या गुम्मज का निर्माण किया जाता है।** आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि मन्दिर जी के गर्भ गृह में भक्ति, पूजा, स्तुति पढ़ने में अधिक मन लगता है।

शिखर जी के पहाड़ पर चन्द्रप्रभ एवं पार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर अर्घ्य बोलने पर पूजा पढ़ने में विशेष आनन्द की अनुभूति होती है, कारण कि दोनों भगवानों के चरण चार दीवारी से बन्द हैं आवाज ऊपर गुम्मज शिखर से टकराकर पुनः लौटती है जिससे एक प्रकार का वायब्रेशन (कम्पन) पैदा होता है जो मन और मस्तिष्क के तन्तुओं में एक संगीत सुख-आनन्द पैदा करता है। ऐसे स्थानों में लोग दूर-दूर से आकर भजन-पूजन पाठ आदि करते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि मन्दिर-गुफा आदि के अन्दर हम मात्र भावों को उत्पन्न करने वाले ही नहीं होते हैं, उन्हें पुनः प्रतिध्वनि के माध्यम से सुनने वाले भी हम होते हैं। इसलिये मूर्ति के ऊपर गुम्मज होती है, क्योंकि मन्दिर जी में होने वाले मंत्र-जाप्य, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन आदि से वहाँ के परमाणु वायु भी चार्ज होती है, इससे अधिक समय तक उसका प्रवाह वहाँ विद्यमान रहता है जिससे पुनः पुनः व्यक्ति को वहाँ पर आकर जप, ध्यान, पूजा-पाठ आदि करने का मन करता है।

मन्दिर जी का शिखर बनाने का दूसरा भाव यह भी है कि किसी भव्य जीव को यदि मन्दिर जी जाने का नियम हो तो परदेश में मन्दिरजी खोजने में आसानी रहती है। दूर से शिखर के दिखने मात्र से ही भव्य जीव को प्रसन्नता होती है जिससे परिणामों में विशुद्धि आती है। शिखर की ऊँचाई से धर्म एवं धर्मात्मा के भावों की उच्चता का भाव होता है कि किस धर्मात्मा व्यक्ति ने अपने चंचल धन का सदुपयोग कर इतना भव्य सुन्दर मन्दिर बनवाया होगा।

स्वर्ण आदि के कलश धर्म की, चारित्र की समृद्धता का प्रतीक हैं, साथ ही अन्तिम कलश की नोंक सिद्धालय का संकेत करती है कि हे भव्य जीव! तेरा अन्तिम लक्ष्य ऊपर सिद्ध शिला होना चाहिए। मन्दिर जी पर फहराती ध्वजायें निर्मल यशकीर्ति का प्रतीक है। ध्वजा वायु के झकोरों से कम्पित होकर घूमती है जो भव्य जीवों को धर्म की शरण में आने का संकेत करती है कि जो भव्य जीव धर्म की शरण को प्राप्त होगा, उसकी निर्मल यशकीर्ति पताका चारों ओर फहरायेगी।

जैसे आपके गमनागमन व्यवस्था में रास्ते के नियम होते हैं। रास्ते में जो चिन्ह बने होते हैं, वाहन-चालक उन्हें देखकर अपनी गाड़ी चलाता है। जैसे- गति अवरोधक चिन्ह देखकर गाड़ी धीमी चलाता है आदि-आदि। ठीक उसी प्रकार से आपने पढ़ा/सुना होगा कि देव या विद्याधरों के विमान यदि जिनालयों के ठीक ऊपर से होकर निकलते हों तो वे गतिहीन (चलने में असमर्थ) हो जाते हैं। अतः देव एवं विद्याधरों के लिये स्मृति संकेत के लिये भी ऊपर शिखर बनाये जाते हैं जिन्हें देखकर देव विद्याधर उनसे बचकर अपना विमान निकालते हैं, यदि उनमें श्रद्धा-भक्ति एवं समय हो तो वे भी भक्ति, पूजा आदि करके अतिशय आदि भी उत्पन्न करते हैं।

वायुमण्डल का दबाव एवं बादलों की बिजली पतन को अवशोषित करने वाले यन्त्रों को ऊँचाई पर ही लगाया जाता है जिससे नीचे जमीन पर गिरने के पहले ही उस बिजली की शक्ति को बिना नुकसान के यन्त्र के माध्यम से जमीन के नीचे पहुँचा देते हैं जिससे कीमती इमारतें मन्दिर आदि क्षतिग्रस्त होने से बच जाती है। अतः मन्दिर जी में शिखर बनाकर तड़ितचालित आदि लगाने से प्राकृतिक प्रकोपों से भी जिन मन्दिरों को बचाया जाता है।

कहीं-कहीं मन्दिरों में सहस्रकूट भी होता है। जिसमें एक हजार आठ मूर्तियाँ होती है। सहस्रकूट, भगवान के एक हजार आठ नामों का यानि सहस्रनाम का प्रतीक है क्योंकि हम लोग अनादिकाल से ही तीर्थंकरों को सहस्रनाम से सम्बोधित करते हुये नमस्कार करते आये हैं और आगे भी करते चले जायेंगे। अतः सहस्रकूट को नमस्कार करने का मतलब है कि एक साथ एक हजार आठ नामों के प्रतीक जिनेन्द्र देव को नमस्कार करना।

कहीं-कहीं नन्दीश्वरद्वीप-जम्बूद्वीप या मध्यलोक आदि की भी कृत्रिम रचनायें हैं। जिनके

दर्शन, पूजन, ध्यान आदि करने से संस्थान विचय नाम का धर्मध्यान होता है, विशुद्धि बढ़ती है एवं अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है। इसी के साथ ही यदि इस जीवन का संस्कार भी अच्छा बना तो जब यह जीव मरकर देव पदवी को प्राप्त करता है तो वहाँ से विचार करता है कि वह नन्दीश्वरद्वीप, जम्बूद्वीप कहाँ है जिन्हें मैंने मनुष्य भव में कृत्रिम रूप से देखा था? आज हम देवत्व पदवी के धारी हैं, वहाँ पहुँचने में समर्थ हैं। अतः आज हम उन अकृत्रिम जिनालयों की साक्षात् वन्दना करने चलें और अपने जीवन को सफल बनायें।

इस प्रकार करने से 'सम्यग्दर्शन' जैसे परमार्थ अमूल्य रत्न की प्राप्ति होती है। अतः इस प्रकार से भावना करते हुये प्रतिदिन मन्दिर जी अवश्य आना चाहिये।

आज बस इतना ही.....

बोलो महावीर भगवान की.......

आपके पिता के द्वारा बनाये गये हर भौतिक साधन जैसे मकान, दुकान, वस्त्र, कानून आदि शायद आपको या आपके बच्चों को अच्छे नहीं लगें। क्योंकि भौतिकता के परिवेश में सबका रूप-स्वरूप बदलता ही रहता है। नई-नई डिजाईनों के प्रति आकर्षण-आस्था होने से पुरानी वस्तुएँ उपेक्षित, उदासीनता एवं अशान्ति का कारण बनती है।

लेकिन आगम-धर्म की व्यवस्था आपके पूर्वजों के काम आयी थी जिससे वे अपने गृहस्थ जीवन को सुख शान्ति से व्यतीत कर गये, अतः जो भी इस धर्म व्यवस्था को निःसंकोच पालन करेगा उसी का जीवन इहलोक-परलोक में सुखी सम्पन्न होगा।

- अमित वचन

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला।
वृहज्ज्ञानांभोभि-र्जगति जनतां या स्नपयति।।
इदानी-मप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता।
महावीर स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे।।

जय बोलो श्री १००८ महावीर भगवान की.....
शारदे! शरद-सी शीतल.......
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की....
जय बोलो परम पूज्य गुरुवर्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज की....
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की......

हम अभी मन्दिर में खड़े हैं। पिछले दिनों से हम मन्दिर में खड़े हैं और मन्दिर के सौन्दर्य का, मन्दिर में आने के प्रयोजन का महत्त्व समझ रहे हैं। कल आपको भगवान के सामने खड़ा करके और भगवान, ईश्वर, प्रभु की प्रति-कृति में जिनबिम्ब में क्या-क्या विशेषतायें हैं? बतलायी थीं। आज भी आप अपने मानस को वहाँ खड़ा कर लें। जिनबिम्ब के सामने अभी आप खड़े हुये हैं और चेष्टा करें। क्योंकि जिनबिम्ब को अपने अन्तः स्थल में विराजमान करने की। अब आप-

"निरखो अंग-अंग जिनवर के।"

अंग-अंग निरखो, नीचे से ऊपर तक, ऊपर से नीचे तक बार-बार देखो, उनकी सम्पूर्णता को अपनी हृदय भूमिका में अवतरित करने का प्रयास करो। जब आपकी अपनी आँखों में जिनेन्द्र भगवान का जिनबिम्ब सम्पूर्ण रूप से समा जायेगा, व्यवस्थित हो जायेगा, आपके मन को छू जायेगा तो प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। हमारे अन्तरंग का प्रकाश जाग्रत हो जायेगा।

आप भगवान के नखों को देखिये। उन नखों से कान्ति निकल रही है। ऐसी अपनी कल्पना कीजिए और वह कान्ति हमारे अन्तःस्थल में जा रही है। आँखों के माध्यम से परावर्तित हो रही है क्योंकि भगवान के नखों में कान्ति है। **जिनके जीवन में कान्ति है उनके जीवन में शान्ति है। आपके जीवन में कोई कान्ति नहीं है। इसलिये आपके जीवन में शान्ति नहीं है।** भक्तामर काव्य के प्रथम स्तोत्र में मानतुंग आचार्य देव यही बात कहते हैं कि भक्त देवों के झुके हुए मुकुटों की मणियों की कान्ति को उद्योदित, प्रकाशित आपके चरण कमल कर रहे हैं। आपके चरणों में इतनी कान्ति है कि मुकुटों की मणियाँ अपने आप झिलमिल-झिलमिल होने लगती हैं। वैसे ही हमारे अन्तःस्थल में प्रभु के पादाम्बुजों की प्रभा आविर्भूत हो जाए तो अलौकिक आनन्द उद्भूत हो जायेंगे।

जैसे कभी अचानक अन्धेरा हो जाता है और अन्धेरा होने के बाद अचानक उजाला होता है तो सभी के मुँह से एक कौतूहल निकलता है, आवाज होना शुरु हो जाती है। वैसे ही हमारे जीवन में जब आन्तरिक उजाला हो जायेगा, अपने आप ध्वनियाँ मुखरित होनी शुरु हो जायेगी। अभी तक आप जिनेन्द्र भगवान के साक्षी में खड़े थे। जिनेन्द्र भगवान के प्रतिबिम्ब को आपने निहारा और जिनेन्द्र भगवान का उपदेश प्राप्त किया।

स्वाध्याय

अब आप जिनवाणी के दर्शन के लिये पहुँचेंगे। यहाँ पर शायद जिनवाणी को अर्घ्य चढ़ाने की ऐसी व्यवस्था नहीं है। जिनवाणी की व्यवस्था, विशेष रूप से मन्दिर जी में ही एक अलग अलमारी में हुआ करती है और वहाँ पर बड़े सुव्यवस्थित ढंग से ग्रन्थ रखे होते हैं। लेकिन हम जितने सुन्दर ढंग से जिनवाणी को विराजमान करेंगे, उतना ही पुण्य एवं परिणामों की विशुद्धि हमारी होगी। अब आप देख लो, आपके यहाँ पर जिनवाणी कैसे रखी हुई है? पूजा की जिनवाणी पढ़ने की जिनवाणी सारी अव्यवस्थित। एक आला, एक आलमारी ऐसी होनी चाहिये जो पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित हो। जिसमें गद्दी चलती है, जिसमें आप शाम को शास्त्र पढ़ते हैं, वह गद्दी का ग्रन्थ कहा जाता है। ग्रन्थ का आसन अलग होना चाहिये।

आप गुरुद्वारे में चले जाइये, कितने सुव्यवस्थित ढंग से गुरुवाणी रखी रहती है। आप तारणपंथ के चैत्यालय में चले जाइये; कितने अच्छे सुव्यवस्थित ढंग से परिमार्जित ढंग से, जिनवाणी का सम्मान करते हैं। कुरान-शरीफ और बाइबिल को देख लीजिए। कितने अच्छे ढंग से रखते हैं। एक जैनी हैं, इतनी जिनवाणी है कि किन-किन को संभालते रहें। कद्र नहीं करते हैं। जिनवाणी का भी दर्शन करना चाहिए। जिस प्रकार से हम जिनेन्द्र भगवान को अर्घ्य चढ़ाते हैं, उसी प्रकार से जिनवाणी को भी चार अनुयोगों के प्रतीक चार ढेरी में अर्घ्य चढ़ाना चाहिये। कैसे चढ़ाना चाहिये-

उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकैः चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवा कुले, जिन गृहे जिन शास्त्र-महं यजे।।
प्रथमं, करणं-चरणं द्रव्यं नमः जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग को हमारा नमस्कार हो। हमारी जिनवाणी चार अनुयोग रूप है। आपकी चतुर्भुज चार अनुयोग धरें। जैसे- चार वेद हैं- अर्थवेद, यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद। ऐसे ही आचार्यों ने इनको भी वेद कहा है। जिनवाणी के माध्यम से सम्यक् ज्ञान की आराधना करनी चाहिये। जिनवाणी क्या है, शास्त्र क्या है और शास्त्र का

क्या स्वरूप है? स्वामी समन्तभद्र आचार्य देव कहते हैं-

अन्यून-मनति-रिक्तं, याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञान-मागमिनः।। ४२।। (रत्न. श्रा.)

जिनवाणी कैसी होनी चाहिये जिसकी हम आराधना करते हैं? "अन्यून-मनित रिक्तं" न्यूनता रहित और अधिकता रहित "याथातथ्यं" जैसी है उसी प्रकार से। विपरीतता रहित, सन्देह रहित यह जिनवाणी का, शास्त्र का स्वरूप है। आगम के ज्ञाता पुरुषों ने इसे शास्त्र का स्वरूप कहा है। ऐसी जिनवाणी का अध्ययन करना चाहिये, ऐसी जिनवाणी को पढ़ना चाहिये।

स्वामी समन्तभद्र आचार्य अपने समय के उद्‌भट, न्यायशास्त्र के शास्त्री रहे हैं। कुन्दकुन्द आचार्य से भी ज्यादा उन्होंने ख्याति प्राप्त की और प्रभावना की। इसलिये शिलालेखों में ऐसा मिलता है कि वह आगामी काल में तीर्थंकर होंगे, उनके सम्यक् ज्ञान की परिभाषा, उनके सम्यक् दर्शन की परिभाषा और चारित्र की जो भी व्याख्या है, इतनी व्यापक और बहुआयामी है कि आप उसे किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की स्थिति में लगा सकते हैं। बड़ी व्यापक परिभाषाओं को उन्होंने अवतरित किया है। **परिभाषा का मतलब प्रमाण-नय, निक्षेप, आगम अनुमान आदि से जो सुसज्जित हो, वह परिभाषा है। यानि प्रमाणित भाषा को परिभाषा कहते हैं। व्यापक भाषा को परिभाषा कहते हैं।** चारों अनुयोगों में सबसे पहले प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग का क्या स्वरूप है? स्वामी समन्तभद्र आचार्य अपनी भाषा में बताते हुये रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ के अन्दर अपनी बात कहते हैं-

प्रथमानुयोग-मर्थाख्यानं, चरितं पुराण-मपि पुण्यम्।
बोधि-समाधि-निधानं, बोधति बोधः समीचीनः।।४३।। (रत्न. श्रा.)

प्रथमानुयोग पुराण पुरुषों का, ऐतिहासिक पुरुषों का चरित्र व्याख्यायित करता है। प्रथमानुयोग पुराण पुरुषों का चरित्र बतलाता है। जिनका जीवन चरित्र पढ़ने से, सुनने से क्या होता है? "बोधि समाधि निधानं।" बोधि का मतलब सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, समाधि का मतलब समता रूप परिणाम, निधान का अर्थ खजाना जो सम्यक् ज्ञान और समता रूप परिणाम का खजाना है। इसलिये इसे बौद्धिक पुरुषों ने सम्यक् ज्ञान कहा है। प्रथमानुयोग ऐसा अनुयोग है जो हर परिस्थिति में व्यक्ति को सम्बल बनाता है।

आज का व्यक्ति आत्महत्या सबसे ज्यादा क्यों करता है? दुःख के कारण, क्लेश के कारण, अपवाद के कारण। उसे कुछ दिखता नहीं है और वह मर जाता है। प्रथमानुयोग हमें सम्बल देता है। **सीता ने कभी आत्महत्या करने की बात नहीं सोची, द्रौपदी ने मरने की बात नहीं सोची, अनन्तमती, मैना सुन्दरी के आत्महत्या नहीं की। सेठ सुदर्शन और वारिषेण ने आत्महत्या**

नहीं की। आप लोग क्यों करते हैं? क्योंकि आप लोगों को अपने कर्म सिद्धान्त के ऊपर विश्वास नहीं है। करणानुयोग के ऊपर विश्वास नहीं है। कितना-कितना अपवाद हुआ सीता का, कितना-कितना कष्ट उठाया, कितने सुख और समृद्धि में पली बालिका और शादी होने के बाद जीवन भर दुःख ही दुःख देखा। सुख की एक कणिका भी नहीं थी। और आप लोगों के लिये ऐसा कौन-सा दुःख है? कौन-सा आपको वनवास हो रहा है, कौन-सा आपका अपवाद हो रहा है? और अपवाद से तो आप डरते ही नहीं हैं। सीधी-सीधी कहते हैं कि जब प्यार किया तो डरना क्या? और बेचारी सीता ने तो कुछ किया ही नहीं था।

अपवाद हो गया तो घबरा गये मर गये। कायर व्यक्ति मरा करते हैं। **संसार में यदि सबसे ज्यादा पाप है तो वह आत्महत्या है। आत्मघाती महापापी। जिसके यहाँ कोई आत्महत्या करता है, उसके यहाँ छः महीने तक सूतक लगता है। छः महीने तक वह दान नहीं दे सकता, पूजा नहीं कर सकता शुभ क्रियाओं द्वारा।** मालूम होना चाहिये कि प्रथमानुयोग हमें सम्बल देता है। अच्छे-अच्छे मुनिराजों के लिये जब समाधि मरण का समय आता है, तब समयसार नहीं सुनाया जाता है। उस समय प्रथमानुयोग सुनाया जाता है। समाधि मरण के अन्त समय प्रथमानुयोग अन्तरंग के सम्बल को अवतरित करता है। खोई हुयी शक्ति और साहस को जाग्रत करता है।

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि कैसे धीरजधारी।
एक स्यालनी युग बच्चायुत पांव भख्यो दुखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुम्हरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव भारी।।

प्रथमानुयोग यह बतलाता है कि उन्होंने ऐसे दुःख को कैसे सहन किया? उनके शरीर को छार-छार कर दिया, लेकिन इतना दुःख सहन कर गये और तुम इतने से दुःख से घबरा गये। धिक्कार है, धिक्कार है! **मानसिक रोग आज के समय में अधिक क्यों हो रहे हैं! अधिक व्यक्तियों ने धार्मिक पुस्तकें पढ़ना बिल्कुल बन्द कर दिया है।** मैगजीन, अखबार, नॉविल, जिनसे टैंशन बनता है, जिनसे हमारे जीवन में सन्देह की भूमिकायें तैयार हो जाती हैं ऐसी चीज तो पढ़ेंगे। लेकिन जिनसे हमारे जीवन के सन्देह धुलते हैं, जिनके पढ़ने से हमारे जीवन के सन्देह दूर होते हैं, ऐसी पुस्तकें पढ़ने के लिये हमारे पास समय नहीं है।

जिन्दगी में चार ग्रन्थों को जरूर पढ़ना चाहिए। एक सम्यक्त्व कौमदी, एक धर्म परीक्षा। प्रथमानुयोगी सम्बन्धी बात बता रहा हूँ। राजा श्रेणिक चरित्र, प्रद्युम्न चरित्र। इन चार ग्रन्थों को यदि आप पढ़ लेंगे तो आपके जीवन में आधे से ज्यादा क्या? साढ़े निन्यानवे परसैन्ट अन्धेरा भाग जायेगा। यह मैं बड़े विश्वास के साथ कहता हूँ। जो भी धर्म की मान्यताओं में हमारी विपरीत बुद्धि घुस गई है वो अपने आप उजागर हो जायेगा। जब लालटेन जल जायेगी, उजाला हो जायेगा तब आपको वस्तु स्थिति अपने आप व्यक्त हो जायेगी।

इन चारों ग्रन्थों के अन्दर आपको इतने नजदीक में ले जाकर बैठा दिया है कि आप अपने आप को पा लो। समय होना चाहिये। ज्यादा बड़े-बड़े ग्रन्थ नहीं हैं, छोटे-छोटे ग्रन्थ हैं। सम्यक्त्व कौमुदी, धर्म परीक्षा, श्रेणिक चरित्र और प्रद्युम्न चरित्र। ऐसा लगेगा कि यह हमारे जीवन की कहानी है और पढ़ते-पढ़ते यह आभास हो जायेगा कि यह हमारी ही कहानी है। हम स्वयं इसके पात्र हैं तो आपके अन्दर के बैठे सारे भ्रम टूट जायेंगे। प्रथमानुयोग बहुत कुछ देता है। **अपने जीवन में चार ग्रन्थों को जरूर पढ़ लेना समय निकाल करके।** यह प्रथमानुयोग बताता है। करणानुयोग क्या बताता है? स्वामी समन्तभद्र आचार्य देव ही करणानुयोग को व्यवस्थित करते हैं।

लोकालोक विभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्श-मिव तथामति-रवैति-करणानुयोगं च ।।४।। (रत्न. श्रा.)

लोक और आलोक की व्यवस्था को करणानुयोग बताता है। करणानुयोग को गणितानुयोग भी कहते हैं जो लोक और अलोक की व्यवस्था को, चारों गतियों की व्यवस्था को बताता है। कैसे 'आदर्श मिव' मतलब दर्पण के समान स्पष्ट रूप से बतलाता है। वह करणानुयोग कहलाता है। करण कहते हैं परिणाम को, भावों को, किस व्यक्ति के किस प्रकार के परिणाम हैं, भाव हैं और उसे उन परिणामों का, क्या कैसा फल मिलेगा? यह करणानुयोग बतलाता है, करणानुयोग हमारी आन्तरिक व्यवस्था को बतलाता है। आठ प्रकार के कर्मों की व्यवस्था को बतलाता है। लोक और अलोक के विभाग को, लोक और अलोक की व्यवस्था को बतलाता है। चरणानुयोग क्या बतलाता है?

गृहमेध्य-नगाराणां, चारित्रोत्पत्ति-वृद्धि-रक्षाङ्गम्।
चरणानुयोग-समयं, सम्यग्ज्ञानं विजानाति। ।४५।। (रत्न. श्रा.)

गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा-कितने सुन्दर शब्द दिये हैं स्वामी समन्तभद्र आचार्य ने। चारित्र की उत्पत्ति कैसे हो, चारित्र की वृद्धि कैसे हो और चारित्र की रक्षा कैसे हो? इन तीनों को बताने वाला चरणानुयोग है। और द्रव्यानुयोग क्या बतलाता है?

जीवाजीव-सुतत्त्वे, पुण्यापुण्ये च बन्ध मोक्षौ च।
द्रव्यानुयोग दीपः श्रुत-विद्यालोक-मातनुते ।।४६।। (रत्न. श्रा.)

द्रव्यानुयोग जीव और अजीव तत्त्वों की, सात तत्त्वों की व्यवस्था को बतलाने वाला पुण्य और पाप की व्यवस्था को करने वाला द्रव्यानुयोग कहलाता है। द्रव्यानुयोग तो अन्तिम चरण है जहाँ आपको केवल उन तत्त्वों की अनुभूति करना है। जहाँ आपको कुछ भी नहीं करना

है। कर्त्तापने से आपकी बुद्धि, कर्त्ता और भोक्तापने से बुद्धि ऊपर बढ़ गयी। केवल वहाँ पर चारित्र का जो फल है, चारित्र का जो रस है, उनका जो अनुपान कर रहा है, वह है द्रव्यानुयोग।

ये चारों अनुयोग हमारे जीवन में जब तक अवतरित नहीं होंगे, तब तक मोक्ष मार्ग बन नहीं सकता है। क्योंकि सम्यक् ज्ञान चारों अनुयोगों का आधार लेकर चलता है। बहुत से लोग यह कह देते हैं कि प्रथमानुयोग में तो राजा रानी की कहानी है इसके पढ़ने से हमारा उद्धार नहीं हो पायेगा। लेकिन उस राजा रानी की कहानी में भी कहानी छिपी है।

एक बार घटना घटी। एक माँ अपने दो बच्चों के साथ बाजार जा रही थी। गुड़िया छोटी थी इसलिये उंगुली पकड़कर चल रही थी और उसका लड़का थोड़ा बड़ा था। वह तो आगे-आगे चल रहा था उछलता-कूदता। थोड़ी दूर आगे जाकर वह बच्चा किसी कारण से गिर गया और जब बच्चे गिर जाते हैं तो सभी जानते हैं कि वह क्या करते हैं? रोते हैं, और उनके पास काम ही क्या है? और कब रोते हैं? जब उन्हें कोई सम्भालने वाला, देखने वाला हो तब ज्यादा रोते हैं। वैसे खेलते में गिर जायें तो नहीं रोयेंगे, क्योंकि उन्हें वहाँ पुचकारने वाला कोई नहीं होता है।

लेकिन उसको मालूम है कि मम्मी पीछे आ रही है, अगर गिर गया तो रोयेगा। तो फिर कुछ मिलेगा खाने-पीने को। अगर बाजार में बच्चे रोये तो मम्मी की हालत देखो। जब वह लड़का गिर गया, तब मम्मी उसके पास पहुँची तो वह रो रहा था। बेटा, कहाँ लगी है, तू क्यों रो रहा है? तुझे कहीं लगी तो नहीं? रो रहा है, चुप हो जा। वह क्यों चुप होने का? माँ क्या करती है? देखो, अभी दो-चार दिन पहले गुड़िया गिर गयी थी, उसके चोट लग गयी थी, पर वह इतनी नहीं रोयी, जितने तुम रो रहे हो। चुप हो जाओ। तुम्हें तो लगी नहीं और तुम इतने रो रहे हो।

लेकिन वह कहाँ मानने वाला, माँ को झुँझलाहट आती है और वह कहती है- ठीक लगी, तुम बहुत परेशान करते हो गुड़िया को, अब और करोगे गुड़िया को परेशान! बच्चा क्यों चुप होने का! फिर माँ दूसरा फार्मूला अपनाती है देखभाल कर चलता नहीं है, गिर पड़ा है तो रोता है। देखभाल कर चलता तो क्यों गिरता? अब किसके लिये रो रहा है? अब वह फिर रो रहा है।

अब माँ क्या करती है? उसे गोदी में लेती है और कहती है कि मेरा बेटा तो राजा बेटा है। राजा बेटा होकर रोता है। अब वह क्या गधा बेटा बनना चाहेगा सड़क के ऊपर? वह नहीं बनना चाहता गधा बेटा। बच्चा चुप हो जाता है।

प्रथमानुयोग क्या है? कल गुड़िया गिर गयी थी, उसे खून निकल आया था, उसके चोट

लग गयी थी, वह इतनी नहीं रोयी और तुम इतना ज्यादा रो रहे हो, यह प्रथमानुयोग है करणानुयोग क्या है? तुम गुड़िया को सताते थे, मारते थे, चिढ़ाते थे, उसका फल है कि तुम गिरे। यह है करणानुयोग? चरणानुयोग क्या है? देखभाल कर चलते नहीं हो तो दोष किसका है? इसका नाम है चरणानुयोग। और द्रव्यानुयोग क्या है? कि मेरा बेटा तो राजा बेटा है। आत्मा के कभी लगती नहीं है, चींटी मर गई। घोड़ा कूद गया। बच्चे खुश हो गये, उसका नाम है द्रव्यनुयोग।

पहले से ही अगर राजा बेटा बन जाओ तो क्या होगा? जैसा आज हो रहा है, वैसा ही होगा। 'मैं रानी और तू रानी, कौन भरेगा कुँआ का पानी।' इन चारों अनुयोगों का अध्ययन कीजिए, चारों अनुयोगों का स्वाध्याय कीजिए। एक प्रश्न आ जाता है कि महाराज हम कुछ जानते ही नहीं है। हम इतने पढ़े-लिखे नहीं हैं, विद्वान नहीं हैं। इसलिये हमारे आचार्यों ने बड़ी व्यवस्था की है। स्वाध्याय को अन्तरंग तप के अन्दर रखा है। स्वाध्याय परमं तपः और उस स्वाध्याय के भेद किये हैं।

"वाचना-पृच्छनानुपेक्षाम्नाय धर्मोपदेशः"

यह तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। यदि आपको कुछ आता है तो वाचना भी स्वाध्याय है। पृच्छना, किसी से धर्म सम्बन्धी प्रश्न पूछना भी स्वाध्याय है। अनुप्रेक्षा, सुने हुये को / पढ़े हुये को बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है यह भी स्वाध्याय है।

आम्नाय- आम्नाय का मतलब क्या है? आप तो दो ही आम्नायें जानते हैं- एक तेरह पन्थी और दूसरी बीस पन्थी। दिगम्बर और श्वेताम्बर। इन आम्नाओं से स्वाध्याय का कोई मतलब नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। आम्नाय शब्द का अर्थ है शुद्धता। शब्दों को, ग्रन्थ को शुद्धिपूर्वक पढ़ना, व्याकरण की शुद्धिपूर्वक पढ़ना। छन्द, समास, सन्धि का ध्यान रखते हुए ग्रन्थ का विश्लेषण करना-पढ़ना आम्नाय नाम का स्वाध्याय है।

प्राचीन काल की प्रणाली रही। प्रेस तो थे नहीं। एक व्यक्ति पढ़ता था और सौ व्यक्ति लिखते थे, प्रतिलिपियाँ बनाते थे। तो जिनके आम्नाय नाम का स्वाध्याय होता था वह व्यक्ति उच्चारण करता था और बाकी के व्यक्ति लिखते थे, ऐसे लोगों को आचार्यों ने उच्चारणाचार्य की उपाधि से सम्बोधित किया है। वीरसेन आचार्य ने 'धवला' टीका के अन्दर जगह-जगह उच्चारणाचार्य का अभिमत दिया है, उल्लेखन किया है। अमुक बात उच्चारणाचार्य के मत से इस प्रकार से कही है- आपने बहुत प्रकार के आचार्यों के नाम सुने होंगे। हम बहुत से विद्वानों को यह बात बताते हैं और वह ताज्जुब में होते हैं। एलाचार्य, बालाचार्य, गणधराचार्य, निर्यापकाचार्य यह तो आपने नाम सुने होंगे। लेकिन उच्चारणाचार्य का नाम आपने बहुत कम सुना होगा। अगर जानते भी होंगे तो उसकी व्याख्या और व्यवस्था को नहीं जान पाये। उच्चारण करना भी स्वाध्याय है।

धर्मोपदेश- आचार्यों ने बताया कि धर्मोपदेश में चार प्रकार की कथाओं का कहना ही धर्मोपदेश है। आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी। चार प्रकार की कथाओं को करना धर्मोपदेश है। वहाँ बैठकर हमें स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय हमें क्या सिखाता है। हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना। चार अनुयोग हमें क्या सिखाते हैं?

अनुयोगों को पढ़ने से क्या होता है? प्रथमानुयोग पढ़ने से **संवेग** जाग्रत होता है और करणानुयोग पढ़ने से **प्रशमता** आती है यानि कषायों का उपशमन होता है। चरणानुयोग, **अनुकम्पा**, **करुणा**, **दया गुण** बतलाता है और द्रव्यानुयोग **आस्तिक्य गुण** को प्रकट करता है। संवेग, प्रशम, अनुकम्पा और आस्तिक्य यह चार सम्यक्त्व के लक्षण हैं।

जब हम प्रथमानुयोग पढ़ते हैं तो हमारे अन्दर क्या? संवेग अवतरित होता है, हम कहाँ है। यह बात हमारे मानस में आ जाए कि हम कहाँ हैं? समझ लो, वहीं से उजाला शुरू हो गया। इस विश्व के अन्दर हमारा कितना-सा अस्तित्व है? जैसे समुन्द्र के अन्दर एक बूँद का अस्तित्व है। **अपने अस्तित्व की स्वीकारता जहाँ हो जाए, वहीं आस्तिक्य गुण है**। जहाँ व्यक्ति अपने गुणों को पहचान ले, वहीं आस्तिक्य गुण है।

"परद्रव्यन सौं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।"

करणानुयोग में प्रशमता आती है। कषायों का उपशमन होता है। नहीं, हमें कषायें नहीं करनी हैं, इसका..... अनुभव होता है। हमें नहीं करना है ऐसा पाप। अन्तरंग में करणानुयोग की व्यवस्था अपने आप जाग्रत हो जाती है।

चरणानुयोग बचाता है। किसको? उस विशुद्धि को, जिस परिणाम को, जिस सम्यक्त्व को आपने प्राप्त किया है, उसकी सुरक्षा करने वाला कवच है चरणानुयोग।

द्रव्यानुयोग प्रकाश है। फैल रहा है यहाँ केवल अनुभूति-अनुभूति है। जहाँ शब्द विराम ले जाते हैं, शरीर विराम ले जाता है, वचन विराम ले जाते हैं, वहाँ द्रव्यानुयोग फलित होता है। तो स्वाध्याय हमारे दैनिक जीवन में निरन्तर आ सकता है। आप यह मत समझिये कि ग्रन्थ पढ़ने से ही स्वाध्याय होगा। स्वाध्याय हमें हेय और उपादेय की बात समझाता है। इसके अलावा स्वाध्याय में है ही नहीं कुछ।

आपने गणेश प्रसाद वर्णी जी का नाम सुना होगा। उनकी धर्ममाता चिरौंजाबाई एक दिन गेहूँ बीन रही थीं। अकस्मात् वर्णी जी कहीं से घूमकर आये। मनुष्य में एक खासियत है, कोई भी व्यक्ति काम कर रहा हो तो उसे देख रहे हैं कि वह काम कर रहा है फिर भी हम पूछते हैं कि क्या काम कर रहे हो? सब आँखों के अन्धे हैं। पूछ लिया, धर्ममाता चिरौंजाबाई से कि आप क्या कर रही हैं? माँ जी कहती हैं- बेटा मैं स्वाध्याय कर रही हूँ। वर्णी जी को गुस्सा

आ गया। माँ जी आप गेहूँ बीन रही हैं और आप कह रही हैं कि स्वाध्याय कर रही हूँ। आप झूठ बोलना कब से सीख गयीं?

माता चिरौंजाबाई बड़ी विदुषी महिला थीं। अपने समय की बड़ी विदुषी महिला रही हैं। उन्होंने समाज का बड़ा सहयोग किया है। **अगर धर्ममाता चिरौंजाबाई नहीं होती तो वर्णी जी भी नहीं होते,** यह ध्यान रखना। **वर्णी जी को बनाने में धर्ममाता चिरौंजाबाई का बहुत बड़ा हाथ है। आप वर्णी जी की "मेरी जीवन गाथा", पढ़िये।** उन्होंने अपनी आत्मकथा अपने हाथों से लिखी। जैनियों की उन्होंने कितनी ठोकरें खायी हैं क्योंकि वे बेचारे जैन कुल में पैदा नहीं हुए थे। उन्होंने जैन धर्म को प्राप्त करने के लिये अपना तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर कर दिया। तब इतनी विशुद्धि कर पाये और अन्त में दिगम्बर साधु बनकर समाधिमरण को प्राप्त किया। सम्यक् दृष्टि जीवात्मा थी वर्णी जी की। वर्णी जी भी जैन रामायण, पद्मपुराण सुनकर, पढ़कर जैन बन गये थे। यह है प्रथमानुयोग की महिमा।

वर्णी जी कहने लगे माता जी आप झूठ बोलना कब से सीख गयीं? धर्ममाता चिरौंजाबाई क्या बोलती हैं? बेटा, एक बात बता कि स्वाध्याय करने में किस चीज का ज्ञान होता है? हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना। **स्वाध्याय हमें यही बताता है कि जो गलत है उसे छोड़ो, और जो सही है उसे ग्रहण करो।** हम गेहूँ को अपनी तरफ ला रहे हैं और कचरे को बाहर फेंक रहे हैं। इसका नाम ही तो स्वाध्याय है। जो गेहूँ उपादेय है, उसको हम अपनी तरफ ला रहे हैं और जो कचरा हेय है उसे हम बाहर की तरफ फेंक रहे हैं। **हमारे जीवन की हर चर्या स्वाध्याय हो सकती है।** यह मत समझना कि हम घन्टों ग्रन्थ पढ़ते रहें, पन्ना पलटते रहें तो इसका नाम स्वाध्याय हुआ।

यदि आपके विवेक में यह जागृति आ जाए कि हमें पानी को दोहरे छन्ने में छानकर पीना है तो जहाँ पर आप छना पानी पी रहे हैं तो वहाँ पर भी आप स्वाध्याय कर रहे हैं। क्योंकि आप जिनेन्द्र भगवान की वाणी का परिपालन कर रहे हैं। जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि पानी छानकर पीना चाहिये। यह स्वाध्याय है जीता-जागता स्वाध्याय है। यदि आप दिन में भोजन कर रहे हैं तो आप स्वाध्याय कर रहे हैं क्योंकि आप जिनेन्द्र भगवान की वाणी का परिपालन कर रहे हैं। जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि दिन में भोजन करना चाहिये, यह स्वाध्याय है। आप यदि दुकान पर बैठे हैं और ईमानदारी से कमा रहे हैं और आपकी अन्तरात्मा कह रही है कि हमें मिलावट नहीं करनी है, ईमानदारी से इतने प्रतिशत ही लेना है तो वहाँ पर भी बैठकर आप स्वाध्याय कर रहे हैं।

स्वाध्याय केवल किताबें पढ़ने से नहीं होता है। स्वाध्याय की घण्टों चर्चा की, घर में जाकर जरा सा नमक कम हुआ तो घरवाली को हजारों गालियाँ सुना डालीं। आचार्य ने इसका नाम

स्वाध्याय नहीं बताया है। **जहाँ समत्व परिणाम की अनुभूति हो, उसका नाम स्वाध्याय है।** जहाँ सुख-दुख एक से दिखें, उस स्थिति में जाकर स्वाध्याय की परणति बनती है। **अपनी आत्मा को सम्यज्ञान से सुशोभित करना स्वाध्याय है। पग-पग पर हमें जो पापों का बोध कराये वही स्वाध्याय है, और ऐसे ज्ञान की आराधना करना ही स्वाध्याय है।** बस, पोथी पढ़ ली, ग्रन्थों के नाम पढ़ लिये, पेज नम्बर, लाईन नम्बर। कोई समझे, वाह! कितना विद्वान है? लम्बे-चौड़े स्वाध्याय करने की कोई जरूरत नहीं है।

यदि आपको भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक आ जाये, वहाँ पर भी आपका स्वाध्याय जाग्रत हो गया। किसी को जीव रक्षा का भाव आ गया तो वहाँ पर भी स्वाध्याय शुरु हो गया। आप अपने दायित्व को पूरा कर रहे हैं, आप अपने दैनिक कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं, वहाँ पर भी आप अपना स्वाध्याय कर रहे हैं। समय से आप ऑफिस जा रहे हैं, वहाँ भी आप स्वाध्याय कर रहे हैं, आप अपने समय से हर क्रिया का परिपालन कर रहे हैं तो स्वाध्याय बहुत बड़ी चीज नहीं है। लेकिन वह अवतरित होना चाहिए। स्वाध्याय के माध्यम से जो हमारे अन्दर ज्ञान उद्भूत होता है, वह चारित्र में ढलना चाहिये, तब वह स्वाध्याय है।

"स्व आत्मने अध्येति इति स्वाध्याय"

जहाँ हम आत्मा के निकट रहकर अपना अध्ययन करते हैं उसका नाम है स्वाध्याय। जहाँ हमारी चेतना, सचेत और सावधान रहे, वहीं स्वाध्याय है। जहाँ हमें अपने मन और बुद्धि से हटकर अन्तरात्मा का भाव सुनाई देने लग जाये, वहीं स्वाध्याय है। पुस्तक तो माध्यम है अपनी तरफ आने का, पुस्तक हमें संकेत देती है। पत्थर है, आप इस रास्ते से जाईये, संकेत है। जाओगे तो पाओगे, नहीं तो खड़े-खड़े पछताओगे। अतः स्वाध्याय करना चाहिये।

लेकिन सबसे पहले आप प्रथमानुयोग को पढ़िये, महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़िये। आपकी आधे से ज्यादा दुविधायें तो वहीं पर समाप्त हो जायेंगी। जो मानसिक विकृतियाँ उद्भूत हो रही है आप अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चारों अनुयोगों के अन्दर अपनी चेतना को मांजो।

लेकिन सबसे पहले प्रथमानुयोग के दौर से गुजरो। प्रथमानुयोग हमारा जितना परिपक्व होगा, उतना ही हमारी अनुभुतियाँ परिपक्व होंगी और यदि केवल एक ही अनुयोग को पकड़े बैठे रहें कि आत्मा, आत्मा, आत्मा तो आत्मा इतनी सस्ती चीज नहीं है जो ऐसे ही मिल जाएगी। **आत्मा का गुणानुवाद करना, आत्मा की बात करना और आत्मा से बात करना जमीन आसमान का अन्तर है।**

एक विद्वान थे जो विशेष रूप से आत्मा का ही गुणानुवाद करते थे। आचार्य क्या कहते हैं, **"अदुःखतं भावितं ज्ञानं क्षीयते दुःख सन्निधौ"** यदि आपकी मिलिट्री (सैनिक) भोजन करते

रहे और जंगलों में पड़े रहे, अभ्यास नहीं करे। और जब लड़ाई का समय आये तो क्या युद्ध जीत पायेंगे? नहीं जीत पायेंगे युद्ध। **सुखी जीवन में किया गया तत्त्व का अभ्यास दुःख आने पर पलायमान हो जाता है। खूँटी पर टँग जाता है।** इसलिये इतनी बात होती है तो हम लोग फालतू थोड़े ही थे, घर में मौज मारते, आत्मा-आत्मा चिल्लाते कोई दिक्कत थी क्या? लेकिन उस आत्मा को पाने के लिये दुःख-सुख सबकी अनुभूतियाँ करते हैं। उसे मांजते हैं कि आत्मा का समत्व तो आ जाए! विपरीत परिस्थितियाँ जुड़ती हैं कि जीवन से जब बौखलाहट उत्पन्न होती है, तब उस समत्व को पाना, कषाय का शमन करना है। मैं ऐसे विद्वान की बात कर रहा था जो आत्मा, आत्मा आत्मा चिल्लाते थे। हाय! मेरी प्यारी आत्मा! प्रभु आत्मा, प्रभु आत्मा! उसके बिना उनका काम नहीं चलता था। एक बार उनको फोड़ा हो गया और जब फोड़ा हुआ तो भाई उसकी चीरा-फाड़ी हुई, डॉक्टर ने क्या किया कि उसको मसक दिया तो वह कहने लगे- हाय! मरा। एक कोई खड़ा था। वह व्यक्ति कहने लगा कि आत्मा तो मरती नहीं है। पण्डित जी कहते हैं भाड़ में गयी वह आत्मा, अभी तो मैं मरा जा रहा हूँ।

जरा सोचिये, विचारिये जिस आत्मा के व्यक्ति ने जीवन भर गीत गाये और उस आत्मा को एक सेकेण्ड नहीं लगा, भाड़ में डाल दिया। बताईये, आप तो हमारी आत्मा से हमें कितना प्यार है? बन्दरिया जैसा। **सच्चा प्यार चिड़िया का और झूठा प्यार बन्दरिया का।** चिड़िया का प्यार सच्चा होता है? मालूम है आपको बरसात के दिनों में दाना-चुग कर लाती है। जब उसका बच्चा छोटा होता है तो वह अपने मुँह से चुगाती है। और बन्दरिया का प्यार देखो, अगर आप बच्चे को खाने को दोगे तो उस बच्चे से छुड़ाकर खा लेगी और बन्दर की एक और विशेषता है कि उसका बच्चा मर जाए तो उसे लिये-लिये घूमेगी। कितना प्यार है, एक प्रेक्टीकल करके देखो। बन्दरिया को पानी के अन्दर डालो और पानी का स्तर धीरे धीरे बढ़ाओ तो जब तक पानी का स्तर गर्दन तक आयेगा, तब तक अपने बच्चे को ऊपर बैठायेगी और जैसे ही पानी का स्तर बढ़ा, वैसे ही अपने बच्चे को दोनों हाथों से नीचे डाल देती है और उसके ऊपर खड़ी हो जाती है बन्दरिया।

ऐसा ही हमारा हाल है। जब दुःख पड़ेगा तो भाड़ में डाल देंगे आत्मा को। शरीर के प्रति मोह जाग्रत हो जायेगा कि हमारा शरीर बचना चाहिये। सम्यक् दृष्टि को शरीर से मोह नहीं होता है। वर्णी जी को, आचार्य वीर सागर महाराज जी, कुन्थु सागर महाराज जी जो अभी फिरोजाबाद में समाधिस्थ हुये हैं उनको फोड़ा हो गया था जाँघ के अन्दर। पूरी जाँघ पोली हो गई। डॉक्टर लोग पूरी सलाइ डाल-डाल कर निकालते थे मवाद। उनके चेहरे पर वह खुशी, वह मुस्कान, आत्मा अलग है और शरीर अलग है क्योंकि उन्होंने उसे दुःख के माध्यम से प्राप्त किया है।

ध्यान रखना, जो आदमी अपने जीवन में बड़ी मेहनत से कमाता है, उसको पैसे जाने में बड़ी तकलीफ होती है कि मेरा पैसा जा रहा है और जो हराम की मिली हुयी है, हराम जैसा ही खाता है, उसको दुःख दर्द नहीं होता है। **जो अपनी आत्मा को कष्ट सहन करके प्राप्त करेगा, वह अपनी आत्मा के अन्दर विकारों को घुसने नहीं देगा कि मैंने बड़ी मेहनत से इसे प्राप्त किया है।** अगर ऐसे ही मुफ्त में आत्म मिल गयी तो उसे खिलाये जाओ, पिलाये जाओ।

स्वाध्याय हमें अपनी तरफ आने का संकेत देता है। स्वाध्याय हमारी अन्तरंग परणति को जाग्रत करने की भूमि है। हमारा यथार्थ आन्तरिक का दर्पण है। हमारी जितनी भी दैनिक परिचर्यायें हैं वह सभी स्वाध्याय पर टिकी हुयी हैं। **विश्व की जितनी भी सोने से लेकर जागने तक और जागने से लेकर सोने तक क्रियाओं का हर प्रकार का ज्ञान हमें स्वाध्याय के माध्यम से होता है। अपने जीवन को किस प्रकार से जियें यह भी हमें स्वाध्याय से मिलता है।** हर परिस्थिति का सामना किस प्रकार से करें? किस प्रकार से उन लोगों ने किया है, यह सभी फार्मूले हमें मिलते हैं। तो स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। स्वाध्याय जैसी विधि और सस्ती चीज कोई नहीं है थोड़ी सी अन्य चीजें छोड़ करके। चार ग्रन्थों का अपने अन्दर स्वाध्याय कर लो। इससे ज्यादा हम कुछ नहीं कहेंगे।

एक बात और कह देते हैं, **मन्दिर जी में बने चित्रों को भी देखने से स्वाध्याय होता है।** क्योंकि इन चित्रों की भाषा अनपढ़ भी पढ़ लेते हैं। अतः मन्दिरों में चित्र बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। आप प्रतिदिन उन चित्रों को देखें, और चिन्तन करें। संसार वृक्ष, षट्लेश्या दर्शन आदि के एक-एक चित्र ही पूरे शास्त्र का सार समझा देते हैं। अतः इन चित्रों के देखने से भी स्वाध्याय होता है।

इसी के साथ मन्दिर जी में लिखे आगम-श्लोक, नीतिवाक्य, दोहे आदि पढ़ने से भी स्वाध्याय होता है। अतः येनकेन प्रकारेण स्वाध्याय करते ही रहना चाहिए।

आज बस इतना ही....

बोलो महावीर भगवान की......

व्यक्ति की अतृप्त आकांक्षायें ही जीवन में ईर्ष्या, विद्रोह एवं आसक्ती का कारण बनती हैं। तृप्ति में संतोष, सहयोग एवं अनासक्त भाव झलकता है।

-अमित वचन

त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते
यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत।
प्राग्गण्ड-शैलः पुनरद्रि कल्पः
पश्चान्न मेरुः कुल पर्वतोऽभूत।

जय बोलो जगद्गुरु भगवान महावीर स्वामी की......
शारदे शरद-सी शीतल......
जय बोलो श्री द्वादशांग जिनवाणी माता की.....
गुरु भक्त्या वयं सार्द्ध-द्वीप-द्वितय-वर्तिनः
वन्दामहे त्रि-संख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।
जय बोलो तीन कम नव करोड़ मुनिराजों की.....
जय बोलो परम गुरु आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज की....
जय बोलो शिक्षा गुरु आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज की...
जय बोलो अहिंसामयी विश्व धर्म की....

कल हमने जगत कल्याणी जिनवाणी माँ के गुण स्मरण किये थे। जिनवाणी माँ हमारे अन्तःस्थल में बैठे हुए अन्धकार को निकाल देती है। हम मन्दिर में बैठे हैं। मन्दिर आये हैं और मन्दिर में हमने अभी तक क्या-क्या पाया है? मन्दिर माध्यम है, अपने अन्दर आने के लिये। अपने से साक्षात्कार कैसे किया जाए? अपने आपको कैसे उपलब्ध किया जाए? अपने आप में जो निधि है, अपने स्वकीय आत्मीय गुण हैं, उनकी पहचान कैसे हो जाए? उनकी पहचान के लिये यह माध्यम बना है- मन्दिर जी आना। क्योंकि घर में भी व्यक्ति कुछ कर सकता है। लेकिन घर में जो कुछ करता है, आकुलता-व्याकुलता भरा होता है। कहीं बच्चें, कहीं घर के वृद्ध लोग, कहीं अतिथि। कोई न कोई किसी न किसी रूप में बाधक। जिन कारणों से हम अपनी आत्मा के संस्कारों को उद्घाटित नहीं कर पाते हैं, वह वातावरण, वह स्थिति नहीं बन पाती है।

इसलिये घर से थोड़ा दूर चलकर हम आते हैं। वहाँ जाकर के थोड़ा समय हम अपनी बुद्धि को थोड़ा विश्राम करायेंगे। विषयों के कोलाहल से दूर ले जाना चाहेंगे। इसलिए इष्ट स्मरण के लिये, गुरु स्मरण के लिये, प्रभु प्रार्थना के लिये, देव पूजा के लिये, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च यह सब इसलिये बनाये गये हैं कि व्यक्ति अपनी दैनिक भौतिक सामग्री से परे होकर भौतिक आनन्द को छोड़कर, भौतिक सुख को छोड़कर उस सुख को प्राप्त करने के लिये तत्पर रहें जिस सुख को ईश्वर ने, परमात्मा ने, प्रभु ने प्राप्त किया है। उस सुख की अनुभूति

की झलक पाने के लिये, आस्था जगाने के लिये व्यक्ति मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा और चर्च की ओर जाता है।

मन्दिर में पहुँचकर हमने बहुत कुछ किया। हमने मूर्ति से, प्रतिमा जी से, बुत से बहुत कुछ खोजा व पाया। जिनवाणी की भी वन्दना की, उसका स्वाध्याय किया, अध्ययन किया। **जिनवाणी भी मोक्ष मार्ग का एक नक्शा है। कहाँ किस स्थान पर किस वस्तु का अस्तित्व है? इस बात को बताने के जिनवाणी परम साक्ष्य है।** जिनवाणी भी अद्‌भुत ज्ञान का खजाना है। कपोल कल्पित ज्ञान का खजाना, जिनवाणी नहीं मानी जाती है।

वर्तमान में बहुत सारे साहित्यों का सृजन हो रहा है। उनके नाम कई तरह के हो सकते हैं। लेकिन उसे जिनवाणी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि वही सारी की सारी कहानियाँ हमें क्षणिक सुख दिखाती हैं और बाद में हमारे सारे अस्तित्व को लूट लेती हैं। उन कहानियों में उन कथाओं का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। भौतिक जगत का अस्तित्व तो हो सकता है। लेकिन परमात्म जगत का अस्तित्व उन कहानियों में नहीं है।

जिनवाणी के अन्दर, शास्त्रों के अन्दर उस चरम शक्ति की अनुभूति करके लिखा है। जिन्होंने उस आत्मा का साक्षात्कार किया है, यह चश्मदीद लोगों के बयान हैं, चश्मदीद लोगों के दस्तावेज हैं। जिन्होंने आत्मा को बिल्कुल साक्षात् देखा है। किन-किन, कैसी-कैसी परिस्थिति में आत्मा के साथ क्या-क्या हुआ है? **बिल्कुल साक्षात् अनुभूत किया है, चश्मदीद बने हैं और उनके बयानों को लिपिबद्ध किया गया है उसे ही शास्त्र कहा है।** उन अनुभूतियों को जिन्होंने साक्षात्कार किया है, करेंगे और कर रहे हैं, वह परमेष्ठी हैं, गुरु हैं। अभी आप मन्दिर जी में थे। मन्दिर में अपने इष्ट का दर्शन किया, जिनवाणी को नमन किया।

माला क्यों?

आपके पास समय रहा तो आपने माला भी फेरी। प्रायः हर धर्म, संस्कृति में माला का भी अपना महत्त्व है। माला फेरी जाती है। कोई उल्टी माला फेरते हैं। दाने बाहर को ले जाते हैं। कोई अन्दर की तरफ फेरते हैं। कोई हाथ से फेरते हैं। कोई श्वासोच्छवास से फेरते हैं। कोई रत्नों की माला से फेरते हैं, कोई मोतियों से फेरते हैं, कोई सूत की माला फेरते हैं। तुलसी की माला फेरते हैं, कोई रुद्राक्ष की माला फेरते हैं। परन्तु आजतक एक भी माला नहीं फिरी-

माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारिके, मन का मनका फेर।।

माला क्यों फेरी जाती है, माला में कितने दाने होते हैं? माला में १०८ दाने होते हैं। प्रायः

हर धर्म संस्कृति के जितने भी जाप अनुष्ठान के उपक्रम हैं, वे सन्तुलित हैं, व्यवस्थित हैं। १०८ दाने उस माला के अन्दर क्यों होते हैं? १०८ के सभी अंकों को आपस में जोड़िये तो नौ बन जायेंगे। विश्व के अन्दर ९ (नौ) की संख्या ऐसी है कि इसको दुगुना करते जाओ और उसका योग लगाओ तो ९ (नौ) ही निकलता है।

हमारे दैनिक जीवन में किसी भी कार्य को हम सम्पादित करते हैं, वह भी १०८ प्रकार से होता है। चाहे पाप रूप हो, चाहे पुण्य रूप हो, चाहे अच्छा हो, चाहे बुरा हो। माता-बहनें आलोचना पाठ पढ़ती हैं। जिनवाणी के अन्दर आलोचना पाठ है। उसके अन्दर लिखा है कि हम जो दैनिक कर्म करते हैं वो भी १०८ प्रकार से होते हैं।

"समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।"

इन सबको परस्पर में आप मिलाईये। समरंभ, समारंभ, आरंभ तीन। मन, वचन, काय तीनों को तीन से गुणा कर दो। (३ x ३ =९) कृत, कारित, अनुमोदना फिर गुणा कर दो। (९ x ३ =२७) क्रोध, मान, माया, लोभ (२७ x ४ =१०८) इनके वशीभूत होकर मनुष्य हर कर्म को करता है। चाहे वह अच्छा हो या बुरा। चारों कषायों का उपशमन करेगा तो अच्छे कर्म करेगा और चारों कषायों के साथ चलेगा तो बुरे कर्म करेगा।

समरंभ क्या है? किसी भी कार्य की संकल्प शक्ति मन के अन्दर अवतरित करना। किसी भी अच्छे, बुरे कर्म के संकल्प को मन के अन्दर अवतरित करना समरंभ है। अब उस कार्य को किस प्रकार से फली भूत किया जाए? उस कार्य को कैसे सम्पादित किया जाए? उसकी सामग्री जुटाना, वह है समारंभ। और जब सामग्री जुट गयी तो उसको परिपूर्ण रूप दिया जाए, व्यावहारिक रूप दिया जाए तो वह है आरंभ।

स्वयं करना कृत है। दूसरे से कराना कारित है और कोई कर रहा है, उसकी प्रशंसा करना, उसको प्रोत्साहन देना वह अनुमोदना है। क्रोध, मान, माया, लोभ की बात तो सभी जानते हैं। गुस्सा करना क्रोध। अहंकार करना मान। छिपाना, कुटिलता रखना-माया। लालच-लोभ। इतनी प्रकार की प्रक्रियाओं से कर्मों का आस्रव होता है जो हमारी आत्मा को सुखी व दुःखी करते हैं। जब अच्छे मार्ग में समरंभ, समारंभ, आरंभ, कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन, काय और क्रोध, मान, माया, लोभ की स्थिति को सँभालते हुये लग जायेंगे। तो अच्छा प्रतिफल देते हैं। इन्हीं का ही हम कोई दूसरा रूपक ले लें तो विपरीत प्रतिफल देते हैं।

उन १०८ कर्मों का आस्रव हमारे जीवन से निकल जाए, माला इसीलिये फेरी जाती है। प्रभु का स्मरण १०८ प्रकार से किया जाता है। हमारे १०८ प्रकार के माध्यम से जो अशुभ

कर्मों का आस्रव हो रहा है, वह प्रभु का नाम लेने से रुक जाए। एक-एक दरवाजे पर एक-एक प्रभु, एक-एक परमात्मा को खड़ा कर देते हैं नाम ले लेकर कि प्रभु, तुम यहाँ खड़े हो जाओ। यह कर्म यहाँ से आ रहा है। इसको यहाँ से न आने देना, मेरे अन्दर की शान्ति को यह कर्म नष्ट कर देते हैं। जब प्रभु का नाम वहाँ केन्द्रित हो जाता है, भावनाओं से, भावनात्मक तरीके से तो फिर पाप कर्म की हिम्मत नहीं है कि वह अन्दर घुस आये। प्रभु हमारी आत्मा की पहरेदारी करते हैं १०८ तरीके से।

लेकिन हमने आज तक उस तरह से प्रभु को पुकारा ही नहीं कि वह हमारी पहरेदारी करें। हमने तो अपने विषय-कषायों से इतना मेल-मिलाप कर रखा है कि वहाँ प्रभु आता ही नहीं है। आता भी है तो दरवाजा देखकर चला जाता है कि इसकी परिणति ठीक नहीं है। इसके साथ मैं और पिट जाऊँगा। क्योंकि प्रभु सोचता है कि जब तुम्हें हमारे अन्दर आस्था नहीं है तो फिर मैं क्या करूँगा तुम्हारे अन्दर जा करके तुम्हारे संग में हम पिस जायेंगे। प्रभु बहुत समझदार है। प्रभु को इतना भोला मत समझो। प्रभु आपकी थोथी बातों से प्रसन्न नहीं होगा। प्रभु भोली बातों से प्रसन्न होता है, थोथी बातों से नहीं।

एक गडरिया था। अपनी भेड़ें चरा रहा था। वह बहुत भोला था और ऐसे लोगों को भगवान मिल जाते है। बड़ा विचित्र है। श्री महावीर जी ने एक ग्वाले को सपना देकर महावीर भगवान निकले। जो जैन धर्म को जानता भी नहीं और मानता भी नहीं है। उस भोले जीव को श्री महावीर भगवान दिखे। उस समय तो राजा महाराजा सभी थे। भगवान बड़े आदमी के बन जाते, लेकिन नहीं। गरीब की जो गरिमा है, गरीवता की जो सुगन्धि है, कैसी सुगन्धी? **जैसे बहुत धूप निकलने के बाद जब बरसात का एक झोंका आता है तो पृथ्वी के अन्दर सोंधी-सोंधी मिट्टी की सुगन्धि होती है ऐसी गरीब की आत्मा में भक्ति की सुगन्ध होती है। उसकी दिखावे की कृत्रिम सुगन्ध नहीं होती।** उसका प्रभु के प्रति, गुरु के प्रति कैसा प्रेम होता है? तुलसीदास जी महाराज ने एक जगह लिखा है-

"ज्यों गरीब की देह को, जड़कारे को घाम।
ऐसे कब लग हो प्रभु, तुलसी के मन राम।।"

तुलसीदास जी ने कभी बड़े आदमी का उदाहरण नहीं दिया। गरीब की देह को उस जड़कारे का घाम कैसा सुहावना लगता है, मीठा लगता है? उसकी ललक पाने के लिये वह भागता है। ऐसे कब लग हो प्रभु तुलसी के मन राम? ऐसी भक्ति, ऐसी उमंग उस भक्त के अन्दर होती है तो वह प्रभु हमारी आत्मा का जाप, माला के माध्यम से स्मरण करते हैं तो वह आता है। लेकिन मुश्किल बात यह है-

"मन्दिर तीरथ भटकते, वृद्ध हो गया छैल।
पग की पनहिया घिस गई, गया न मन का मैल।।"

"पाप करते हैं तो बेशुमार करते हैं।
गिन गिन कर नाम लेते हैं परवर्दिगार का।।"

ईश्वर का, परमात्मा का, गुरु का नाम गिन-गिन कर लेंगे जैसे रुपया गिन रहे हों। कहीं एक ज्यादा न चला जाए और पाप, कोई गिनती है। दिन भर में मन से, वचन से, काय से, कृत से, कारिता से, अनमोदना से, समरंभ से, समारंभ से, आरंभ से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से कितने प्रकार से हम लोग पाप करते जाते हैं?

इसलिए प्रभु का नाम लेने के लिए १०८ ानों का प्रावधान रखा और विशेषता रखी उसके सुमेरु पर तीन दानें और डाल दिये। उन १०८ दानों को नियंत्रण में रखने के लिये तीन दाने और डाल दिये । वह तीन दाने हमारे मन, वचन, काय की एकाग्रता के प्रतीक है। सारे के सारे दानें अलग-अलग दो राउन्ड में रहते हैं, एक ही धागे के अन्दर रहते हैं। दोनों धागे एक ही दाने के अन्दर से गुजरते हैं। जहाँ भक्त और भगवान का भेद मिट जाता है-

"जब मैं था, तब हरि नहीं, जब हरि था मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी जामें दो न समाहिं।।"

जहाँ अहंकार नष्ट हो जाता है, वहाँ पर परमात्मा के दर्शन होते हैं। तो वह तीन दाने रत्नत्रय के प्रतीक हैं जो १०८ प्रकार के कर्मों को रोक सकते हैं। रत्नत्रय क्या है? कल भी बताया था। **हमारी बोल-चाल की भाषा में, हम सबसे पहले इसी बात का उपदेश देते हैं बच्चों को। बेटा देखभाल कर चलो। देखभाल कर चलना, अच्छी तरह देखकर चलना। मतलब कहीं घटना या दुर्घटना ना हो जाए। घटना व दुर्घटना क्यों होती है? क्योंकि हम अच्छी तरह देखकर नहीं चलते हैं। देखना, सम्यक् दर्शन है। भालना, सम्यक् ज्ञान है और चलना सम्यक् चारित्र है। रत्नत्रय की आराधना से हम इतने प्रकार से दुष्कर्मों से छुट सकते हैं।**

माला फेरने की आकुलता मत कीजिए कि इतनी माला फेरी। आप अपने इष्ट को केवल नौ बार ही जपिये। एक महानुभाव पूछ रहे थे कि महाराज, नौ बार ही णमोकार मंत्र पढ़ने की बात क्यों कही जाती है? तो हमने नौ की ही बात बतायी थी कि नौ का अंक ऐसा है कि कहीं भी उसको दुगना करके उसका योग निकालना हो तो वह अपने स्वरूप में आ जाता है। कितने ही विस्तार में ले जाओ। जब हम उसका संकलन करते हैं तो वह अपने स्वरूप में आ जाता है। **नौ का अंक अपने स्वरूप को बताने वाला अंक है।** कहने का मतलब कि माला जो है, वह आकुलता-व्याकुलता से नहीं निराकुलता से फेरिये। आप दानों से मत गिनिये। आप

समय ऐसा निश्चित कर लीजिए की हमें केवल पाँच मिनट ही प्रभु का स्मरण करना है। पाँच मिनट में चाहे एक बार फेरो, लेकिन कायदे से फेरो।

तो मैं उस ग्वाले की बात बता रहा था। वह अकेला बैठा-बैठा प्रभु से कहता था, प्रभु तू मेरे पास आ जा। मैं खाली रहता हूँ। मैं तेरे पैर दबाऊँगा। मैं तुमको बाजरे की मोटी-मोटी रोटी खिलाऊँगा। मैं तेरी सेवा करूँगा। मैं तुझे दूध पिलाऊँगा, मैं तुझे नहलाऊँगा। तो एक विद्वान वहाँ से गुजर रहा था। वह उस ग्वाले की प्रार्थना को सुन रहा था। उसको बहुत ही झुँझलाहट आयी कि तू कैसा मूर्ख है? तू परमात्मा को ऐसे बुला रहा है। उसको पीटा। परमात्मा अवतरित हुआ। उस पण्डित को पकड़ लिया और उसको सजा दी।

उस ग्वाले की भक्ति में खुशबू थी। उसकी भक्ति में आन्तरिक आह्वानन था। हमलोग शब्दों का आडम्बर ढूँढते हैं। प्रभु को प्रसन्न करने के लिये भक्त कभी शब्दों का आडम्बर नहीं ढूँढता है। कभी श्वांग नहीं करता है। भगवान होते हैं और जो परमात्मा, गुरु श्वांग से प्रसन्न हो तो वह परमात्मा, गुरु है ही नहीं। गुरु भावों को महत्त्व देते हैं, भाषा को महत्त्व नहीं देते हैं। भगवान ने आज तक भावों को महत्त्व दिया है। भाषा को कभी महत्त्व नहीं दिया। श्री महावीर जी में चले जाओ, जिनकी मैं अभी बात कर रहा था, अब वहाँ पर बहुत विशाल मन्दिर बन गया है। मीणा, गूजर आते हैं त्यौहारों पर रोटी, दाल, चावल, खीर लाते हैं और फर्श पर फेंकते हैं और कहते हैं ले, बाबा खा ले। गालियाँ देते हैं भगवान को। भगवान उनकी गालियों से प्रसन्न हैं। नानक महाराज कहते हैं कि उस खून की कमाई की पूड़ी से गरीब की खून-पसीने की मेहनत की सूखी रोटी जो है, उसमें ज्यादा रस है।

आज तक किसी बड़े आदमी ने भगवान के दर्शन नहीं किये। लेकिन गरीब लोगों ने भगवान के बहुत दर्शन किये हैं। अगर अमीर आदमी ने दर्शन किये हैं तो उसे भी गरीब आदमी बनना पड़ा होगा। अमीर बनकर कभी भगवान के दर्शन नहीं हो सकते हैं। उसे हम जैसा गरीब बनना पड़ा होगा। जितने भी महापुरुष हुये हैं, उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया और जंगल को चले गये, गरीब बन गये। अपना जो कुछ था, वह सब लुटा दिया। सब बेकार है। यह सब परमात्मा से मिलने में बाधा करते हैं। इसके माध्यम से आपस की प्रेम-प्रीति टूटती है। यह माया ही सब हमारे भगवान में भेद करा देती है।

दो मित्र थे। आपस में उनमें बड़ा प्रेम था। एक मित्र ने अपने खेत में ककड़ियाँ बो दी थीं। अच्छे-अच्छे फल की फसल बो दी। एक मित्र कहीं बाहर गया हुआ था। वह कई दिन बाद लौटा। उसे अपनी मित्र की याद आयी। वह तो अपने खेत पर था, ककड़ियों की रक्षा कर रहा था, फसल की रक्षा कर रहा था। एक अच्छी-सी ककड़ी को देखकर उसके मन में विचार आया और उसका मित्र सामने से आ रहा था। उसने अपने मित्र को देखा और सोचा कि यह तो बड़ी गड़बड़ हो गयी। वह आयेगा तो उसको ककड़ी खिलानी पड़ेगी तो यह ककड़ी टूट जायेगी।

इसलिये वह अपने खेत की पाल पर लेट गया। मित्र आया, उसने देखा कि हमारा मित्र सो रहा है। लेकिन बगल में एक सुन्दर-सी ककड़ी खिल रही है। उसका मन हुआ कि अपने मित्र को जगाये/उठाये। लेकिन वह किसी कारण से आगे बढ़ गया कि मेरे मित्र के मन में जरूर कुछ न कुछ गड़बड़ हो गया है आदर-सत्कार नहीं करना चाहता है। तुलसीदास जी क्या कहते हैं?

"आवत ही हरषै नहीं, नैनन नहीं स्नेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसै मेह।।"

कितनी ही प्रेम-प्रीति हो, भाव बता देते हैं। पदार्थ और संसार की और वस्तुएँ, खाने-पीने का मामला अलग है। लेकिन प्रेम और प्रीति केवल भावों से ही जुड़ी होती है। उसके मन में कुछ गड़बड़ हो गयी और वह आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद वह मित्र उठा। उसने देखा कि वह ककड़ी वहीं पर लगी हुई है। मित्र आकर के चला गया है। बड़ी विचित्र स्थिति बनी उसके मन की। हमारा मित्र बुरा मान गया, मात्र एक ककड़ी के कारण हम दोनों के आपस का प्रेम टूट गया।

उसने उठकर लाठी से उस ककड़ी को पीटना शुरू कर दिया कि तेरे कारण मेरी वर्षों की पुरानी मित्रता टूट गयी। तू है कि कितने दिन की? तुझे कोई न कोई खा ही लेगा। लेकिन तेरे कारण जो मेरी मित्रता थी, वह खटायी में पड़ गयी और उसको लाठियों से पीटने लगा। आवाज आ रही है, ककड़ी को पीट रहा है। लौटकर आ गया मित्र। बिना बुलाये आगया और कहने लगा, क्या हो गया भाई? इस ककड़ी ने हम दोनों के बीच एक दरार डाल दी, मित्र ने कहा।

तो इस संसार की, विषय-कषायों की वस्तुएँ हम लोगों को धर्म से दूर ले जाती हैं, व्यावहारिक जीवन में दरार डाल देती हैं, सामंजस्य नहीं होने देती हैं। **जिन-जिन पदार्थों से हमारे जीवन में आकुलता-व्याकुलता का प्रादुर्भाव हो, उन-उन पदार्थों की अपेक्षाओं का परित्याग कर दें। अपने आप एक समत्व का साक्षात्कार अपने जीवन में हो जायेगा।** तो माला फेरने का मन से उपक्रम करो, करने की चेष्टा करो। उसके बाद हम तीसरी प्रणाली पर आते हैं।

सत्संगति क्यों ?

गुरु-दर्शन, यह बहुत कम लोगों ही पाते हैं। किसी-किसी का अपना-अपना भाग्य होता है। सत्संगति, गुरु दर्शन यह सब एक ही नाम है। संसार में दो बातें बड़ी दुर्लभ हैं। तुलसी दास जी कहते हैं-

"सन्त समागम, प्रभु भजन तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय।।"

धन, सम्पदा, स्त्री इत्यादि इससे कोई मतलब नहीं है। यह तो पापी के भी होते हैं। लेकिन सन्तों का समागम और प्रभु का भजन। ये संसार में अत्यन्त दुर्लभ हैं।

"शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधुवो नहीं सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।"

हर पर्वत पर माणिक नहीं होते हैं। हर हाथी के मस्तिष्क पर मुक्ता नहीं होती है। सज्जन, साधु पुरुष हर जगह नहीं मिलते हैं और आपके आस-पास चन्दन का वृक्ष नहीं मिलेगा। इसीलिये सन्त संगति को महत्त्व दिया। कैसे मिलना चाहिये सन्त से? कैसे दर्शन करना चाहिये? कैसे साक्षात्कार करना चाहिये? गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

"सन्त मिलन को चालिये, तज माया अभिमान।
ज्यों-ज्यों पग आगे धरैं, कोटि यज्ञ फल जान।।"

सन्तों के पास जाओ तो माया और अभिमान को बाहर खूटी पर टाँग आओ, छोड़ आओ, क्योंकि गुरु जो बाँट रहे हैं, संत जो बाँट रहे हैं, यदि आप पहले से ही लेकर आओगे तो जो गुरु दे रहे हैं, वह किसमें लेकर जाओगे? उसके लिये आपके पास जगह नहीं होगी। इसलिये माया और अभिमान का अन्दर से जो भराव है उसको बाहर तिलांजली देकर आ जाओ।

एक भक्त जब चलने लगा, गुरु दर्शन के लिये तो गुरु महाराज का कमण्डल बाहर रखा हुआ था। उसने कहा- कहाँ जा रहे हो? इधर आओ। उसने कहा मैं गुरु महाराज के दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ। तो कमण्डल ने बुलाया और उससे कहा-

"गुरु दर्शन से प्रथम कमण्डल, कहता मुझको देखो।
मुझ जैसा अपने को, गुरु चरणों में मत फेंको।।
क्योंकि त्यागियों की सेवा में, यह मेरा जीवन बीता।
बहुत सुने उपदेश, मगर फिर भी रीते का रीता।।"

खाली पड़ा रहता है बेचारा। भर नहीं पाया आज तक। ऐसे कमण्डल बन कर नहीं आना। जब वह श्रावक, श्रद्धालु, गुरु महाराज के पास पहुँचा तो हाथ में लाई हुई सामग्री को किस प्रकार से अर्पण किया उसने-

"उदक-चन्दन-तन्दुल पुष्पकैःचरु सुदीप सुधूपः फलार्घकैः।
धवल-मंगलगान-रवाकुले, जिनगृहे गुरुणां-अहं यजे।।"
ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रय प्राप्तये गुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र स्वरूप गुरु के लिए हमारा नमस्कार हो। इस प्रकार मंदिर जी में विराजित आचार्य-उपाध्याय-साधु-आर्यिका जी-ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका जी को द्रव्य-अर्घ्य तीन ढेरी में (तीन जगह) चढ़ाना चाहिये। **आचार्य-उपाध्याय-साधु को नमस्कार करते समय नमोऽस्तु बोलना चाहिये। आर्यिका माता जी के लिये वन्दामि-ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका जी के लिये इच्छामि या इच्छाकार, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जी को सादर हाथ जोड़कर वन्दना करना चाहिये। गुरु को नमस्कार करते हैं।** पिच्छी हाथ का एक उपकरण है। यह एक अहिंसा का उपकरण है लोग कहते हैं कि महाराज इसको लगा दो। अरे! पिच्छी तो कीड़े मकोड़ों को हटाने के लिये लगायी जाती है, आप कोई कीड़े-मकोड़े तो हो नहीं। इसकी मृदुता, प्राकृतिक कोमलता इतनी है कि इसे व्यक्ति अपनी नंगी (खुली) आँखों पर लगाये, फिर भी आँखों पर किसी प्रकार की जलन नहीं होगी, किरकिरी नहीं मचती है, दर्द नहीं होता है। यह प्राकृतिक उपकरण है। इसलिये इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव बच जाता है, बचा लेते हैं, तब जमीन पर बैठते हैं। पिच्छी भी कहने लगी कि आपने कमण्डल की बात सुनी, अब कुछ मेरी भी बात सुनो-

"जो पिच्छी का पीछा करते, वे श्रावक कहलाते।
जब तक पिच्छी का पीछा है, मोक्ष नहीं जा पाते।।
जिनने पिच्छी पकड़ी, उनको मोक्ष लक्ष्मी वरती।।
ऐसे त्यागी सन्तों का, पिच्छी खुद पीछा करती।।"

गुरु, विश्व के अन्दर गुरु का सबसे बड़ा महत्त्व है। हर मजहब, हर धर्म, हर संस्कृति, हर सम्प्रदाय में उस धर्म को जिन्दा रखने वाला है तो वह गुरु है। यदि ये गुरु नहीं होते तो जरा आप कल्पना करके देख लो कि धर्म की क्या दशा होती? इस धर्म को सुरक्षित रखने के लिये हमारे गुरुओं ने कितना बलिदान दिया है? कितना तप, त्याग संयम, तपस्या की है? गुरु एक ऐसा माध्यम है जो परमात्मा से साक्षात्कार कराता है। कबीरदास जी अपने एक दोहे में लिखते हैं-

"कबीरा वे नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।"

अभी किसी साहित्यिक को बुलाया जाए और इसका अर्थ कराया जाए कि इस दोहे का अर्थ करो। "कबीरा वे नर अन्ध हैं" वे मनुष्य अन्धे हैं जो गुरु को और बताते हैं, उपेक्षित बताते हैं, गुरु की उपेक्षा करते है, गुरु का अपने जीवन में कोई महत्त्व नहीं समझते हैं। अंतिम पंक्ति में कहे हैं कि "हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर"। क्या अर्थ इसका हुआ? भगवान रूठ जाए तो गुरु ठौर है और यदि गुरु रूठ गया तो कोई ठौर नहीं है। ये संसारी जीव तो अपने मतलब का अर्थ निकालेंगे।

लेकिन ध्यान रखना जो हरि रूठता है, वह हरि नहीं और जो गुरु रूठता है, वह गुरु नहीं। रूठने वाला कौन होता है? जिसका काम नहीं बनता है वह ही भगवान को गाली देता है। भगवान ने आज तक किसी को गाली दी। आप मन्दिर जाते हैं और आप ८-१० दिन मन्दिर नहीं जाओ तो क्या भगवान आपका हाथ पकड़कर पूछते हैं कि आप मन्दिर क्यों नहीं आये? लेकिन आप आठ-दस दिन मन्दिर आये, आपने प्रार्थना की और आपका काम नहीं हुआ तो आप कहते हैं तुम भगवान नहीं, "तुम तो पत्थर के भगवान हो।" गाली देकर चलते बनोगे, क्योंकि आपकी सुनी नहीं।

"नाराज सो महाराज नहीं, महाराज तो नाराज नहीं।" आप रूठेंगे गुरु से क्योंकि गुरु कड़क होता है। गुरु का अर्थ भारी होता है। गुरु का वजन हर व्यक्ति सहन नहीं कर पाता है और जो गुरु का वजन सहन नहीं कर पाये, वह संसार में कुछ नहीं कर पाता।

"गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, धड़-धड़ खाड़े खोट।
अन्तर हाथ पसार के, बाहर मारे चोट।।"

कैसा उदाहरण दिया? यदि मिट्टी कुम्हार की थप्पों की चोटों से डर जाए, तो वह कभी भी व्यक्ति के सिर पर नहीं बैठ सकती, घड़ा नहीं बन सकती है। यदि पत्थर शिल्पकार की छैनी, हथौड़ी की चोटों से डर जाए तो वह कभी प्रभु की मूरत नहीं बन पाता है। जब एक पत्थर को इतना सहन करना पड़ता है, जब एक मिट्टी को इतना सहन करना पड़ता है, हम तो एक इन्सान हैं। हमें भी कुछ सहन करना होगा। वैसे भी कहते हैं। **शिष्य और शीशी को डांट लगाकर रखना चाहिये।**

गुरु हमारे स्वरूप को उद्घाटित करते हैं। निमित्त कारण है गुरु हमारे जीवन के शिल्पकार हैं। हमारा जीवन अनगढ़ पाषाण की तरह है। मिट्टी की तरह है, उनके चरणों में जब हमारा जीवन समर्पित हो पाता है, हमारी श्रद्धा समर्पित हो जाती है, तब गुरु उसमें तरासते हैं। उसकी जैसी सम्भावना होती है, उस तरीके का रूप देते हैं। कोई हीरा होता है, कोई पन्ना होता है, कोई मोती होता है, कोई लाल होता है और कोई माणिक होता है। जिस तरह का होता है, जिस शक्ल का, जिस रूप का होता है, उसमें ढाला जाता है।

वह तो गुरु ही जानता है कि इसमें किस प्रकार की संभावना है? वैसे ही वह उसको तरासेगा। **गुरु कुशल शिल्पी है जो भक्त की भावनाओं को तरासता है। गुरु साक्षात् जीता-जागता शास्त्र है।** जिस शास्त्र को आपने महीनों और सालों में पढ़ा। उस शास्त्र का सम्पूर्ण निष्कर्ष गुरु के सान्निध्य में बैठकर एक श्लोक में, एक शब्द में आपको मिल सकता है।

गुरु का अर्थ है: 'गु' का अर्थ अन्धकार और 'रु' का अर्थ दूर करना अर्थात् अन्धकार को दूर करना। जो हमारे अन्तरंग में बैठे हुये अज्ञान अन्धकार को दूर करते हैं, उन्हें गुरु कहते हैं। जो हमारे भ्रम को मिटा दें, वह गुरु हैं। गुरु वैद्य हैं, गुरु इन्जीनियर हैं, गुरु वकील हैं,

गुरु डॉक्टर हैं। जितने भी हमारे जीवन के पहलु जुड़े हुए हैं। जिन-जिन माध्यमों से होते हैं, वह सब गुरु के अन्दर उपलब्ध होते हैं। नेक सलाह देते हैं, इसलिये वकील हैं। हमारी जीवन शैली का एक नक्शा खींच देते हैं इसीलिये इन्जीनियर हैं। हमारे अन्दर बैठे हुये भ्रम रोगों को निकाल देते हैं, उनका ऑपरेशन करते हैं इसलिये डॉक्टर हैं। **मनोवैज्ञानिक कहते हैं जितने अच्छे तरीके से आप अपने मन की बात अपने गुरु को बता सकते हो, उतने खुलकर और किसी को नहीं। इसलिये प्रायश्चित का विधान है। गुरु के समक्ष गलती को स्वीकार करना। जैसे आपके शारीरिक चिकित्सा करने वाले फैमली डॉक्टर होते हैं, उसी प्रकार आपके एक फैमली गुरु भी होना चाहिये। जिसके जीवन में गुरु नहीं उसका जीवन शुरू नहीं।** एक सम्प्रदाय में गुरुमुखी होने की पूरी दीक्षा विधि है। गुरुमंत्र कान में फूँका जाता है? गुरु क्या नहीं हैं? जो गुरु साक्षात् ब्रह्म से मिला देते हैं। वह परम मित्र हैं।

"गुरुः ब्रह्मा गुरुः विष्णु, गुरुः देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परम ब्रह्मा, तस्मै श्री गुरुवे नमः।।"

तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो, तुम्हीं हो बन्धु, सखा तुम्हीं हो। सब कुछ वही हैं। लेकिन तुम गुरु से कुछ छिपाने की चेष्टा करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो झपटने की चेष्टा करते हैं कि गुरु से यह ले लें, वह भी ले लें आदि-आदि।

घर में माता-पिता की जायदाद होती है- कंकड़-पत्थर। हम तो इसको कंकड़-पत्थर ही मानते हैं। हीरा-मोती, सोना-चाँदी यह सब कंकड़-पत्थर ही तो है। यह सब मिट्टी से ही तो निकले हैं। कोई आसमान से तो टपके नहीं हैं जो उनको झपटने के लिये उनकी खुशामद करेंगे। यह नहीं चलता है। गुरु की दृष्टि बड़ी विचित्र होती है। वह समझ जाते हैं- कौन व्यक्ति किस भाव से सेवा कर रहा है?

इतिहास के अन्दर उसी ने सब कुछ पाया है जिसने गुरु की निःस्वार्थ भाव से सेवा की है और जो गुरु के सिंहासन को छुड़ाने में लगे, गुरु की जायदाद, गुरु का आश्रम अपने नाम कर लो आदि। उनको सब पौद्‌गलिक पदार्थ तो मिला, लेकिन जो आन्तरिक ज्योति गुरु की जल रही थी उसे जला नहीं रख पाया। वह ज्योति तो केवल उसी ने जला पायी जिसने गुरु के बाहरी हर पदार्थ को नकार दिया केवल आन्तरिकता से जुड़ा रहा।

पिछला इतिहास उठाकर देख लो। ऋषि-मुनियों के आश्रम में जितने भी बालक पढ़ते थे, जो गुरु की गाय चराता था, जो गुरु को ईंधन लाकर देता था। उस बालक ने सबसे ज्यादा ज्ञान उपार्जन किया। और वह बैठे रह गये जो पोथी-पतरा पढ़ते रहे। उनको प्रभु के, परमात्मा के, गुरु के किसी के दर्शन नहीं हुए, वह पढ़-पढ़ाकर अपने घर चले गये।

विश्व के अन्दर गुरु एक सबसे बड़ी सामर्थ है। एक बार देवताओं के अन्दर विचार-विमर्श चल रहा था कि संसार में सबसे बड़ा कौन है? तो उन्होंने कहा- सबसे बड़ी पृथ्वी है

तो विचार भी किया। हाँ, पृथ्वी सबसे बड़ी है लेकिन एक देव उससे सहमत नहीं हुआ। वह कहने लगा- यदि पृथ्वी बड़ी है तो सब समझो कि वह शेषनाग के सिर पर क्यों टिकी है? जो इतनी बड़ी पृथ्वी का वजन सहन कर रहा है तो वह उससे बड़ा है। सबकी अक्ल में आयी और कहा- हाँ, शेषनाग जी सबसे बड़े हैं। सब कहने लगे-हाँ भाई! शेषनाग जी सबसे बड़े हैं।

लेकिन एक देव कहने लगा कि जब शेषनाग जी बड़े हैं तो वह शंकर जी के गले में क्यों पड़े हैं? तो सबकी अक्ल में आयी की शंकर जी सबसे बड़े होने चाहिए। तो सब कहने लगे कि शंकर जी सबसे बड़े हैं। एक देव कहने लगा- यदि शंकर जी सबसे बड़े हैं तो वह कैलाश पर्वत पर क्यों पड़े हैं? तो सभी कहने लगे कि हाँ भाई कैलाश पर्वत सबसे बड़ा है। तो एक देव कहने लगा- कि कैलाश पर्वत सबसे बड़ा है तो वह हनुमान जी के हाथों में क्यों उठा है? तब सबने कहने लगे कि हनुमान जी सबसे बड़े हैं। फिर एक देव कहने लगा- कि हनुमान जी सबसे बड़े हैं तो रामचन्द्र जी के चरणों में क्यों पड़े हैं? तो फिर सभी कहने लगा- कि सबसे बड़े रामचन्द्र जी बड़े हैं, रामचन्द्र जी बड़े हैं। तो एक देव कहने लगा कि रामचन्द्र जी बड़े हैं तो वह गुरु वशिष्ठ के चरणों में क्यों पड़े हैं? तो सबको मालूम हुआ कि गुरु का स्थान सबसे बड़ा है।

"हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।"

एक बार आप भगवान को मानने से इन्कार कर दोगे, भगवान को गाली दे आओगे तो कोई बात नहीं है। गुरु रूठे नहीं ठौर। यदि गुरु से रूठ गये तो संसार में कोई ठौर नहीं है। गुरु एक ऐसा सलाहकार है जो आपको रूठे हुये से मैत्री करा देगा, किसी न किसी प्रकार से आपको रूठे परमात्मा से मिला ही देगा। इसलिए-

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी उन गुरुन की, गोविन्द दियो बताए।।"

गुरु वह है जो आप परमात्मा से रूठ जाओगे। फिर भी किसी न किसी प्रकार से आपका परमात्मा से परिचय करा देगा। लेकिन यदि गुरु रूठ गये तो संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपको परमात्मा से साक्षात्कार करा दे?

गुरु उपासना से क्या मिलता है? यह बात बहुत सोचने और समझने की है। हम शास्त्र कितनी भी बार पढ़ लें? फिर भी शास्त्र हमको समझा नहीं सकता है। लेकिन गुरु के पास आकर हम बहुत कुछ समझ सकते हैं। लेकिन यह गुरुओं का समागम भी, सन्तों का समागम भी बिना पुण्य के नहीं मिल पाता है।

"पुण्य पुञ्ज बिन मिलहिं न संता, सत्संगति संसृति कर अन्ता।"

उसके लिये प्रकृष्ट पुण्य का संचयन चाहिये। जो सत्य से साक्षात्कार करा देते हैं, उसका नाम है सत्संगति। **जो आन्तरिक सत्य है, संत उससे हमारा साक्षात्कार करा देते हैं। उस अंतरंग सत्य में प्रभु, परमात्मा की अनुभूति करा देते हैं वह सन्त होते हैं।** जो अन्त से सहित होते हैं वह संत होते हैं जिनकी सत्संगति संसार को अन्त कराने वाली होती है। **सत्संगति संसृति कर अन्तः** । सत्संगति का अर्थ- जिनकी संगति हमारे संसार के परिभ्रमण की यात्रा को मिटा देती है, जो अन्तरंग में विषय-कषायों के बवण्डर उठ रहे हैं, विषय-कषायों के तूफान आ रहे हैं। विषय-कषायों के जंगल में भटक गये हैं। कषायों के काँटे चुभ रहे हैं। इन सबसे परिमुक्त करके गुरु, हमारे अन्दर नयी स्फूर्ति, नया उजाला, नया प्रकाश उद्घाटित कर देते हैं। आपके पास सब कुछ हो। एक भक्त कहता है-

"शरीरं सुरूपं सदा रोग मुक्तं,
यशश्चारु चित्रं धनं मेरु तुल्यं।
गुरोरंघ्रि पद्मे मनश्चेत् न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं?।।"

आपका शरीर सुन्दर है, रोगमुक्त है, यश है एवं सुन्दर चरित्र भी है और सुमेरु पर्वत के समान आपके पास धन है। फिर भी यदि गुरु चरणों की भक्ति नहीं है तो तुम्हारे पास कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, गुरु परमात्मा का साक्षात्कार कराते हैं **और जो व्यक्ति गुरु को अपने अन्तःस्थल में विराजमान कर लेता है तो गुरु के सहारे भगवान, परमात्मा अपने अन्दर भी आ जाते हैं।** इतना सस्ता सौदा और कहाँ मिलेगा? आप अकेले भगवान को पकड़ने जाओ तो परेशान होंगे कि नहीं होंगे। लेकिन गुरु चरण की सेवा, वह अपने आप आपके अन्दर परमात्मा की अनुभूति करा देगी।

एक बार हम गुरुभक्ति पर प्रवचन दे रहे थे कि गुरु भक्ति करनी चाहिए आदि। एक महिला ने प्रवचन के बाद हमसे पूछा-महाराज जी आज हमारे साधु-गुरु शिथिलाचारी हो गये हैं, हम कैसे जानें कि ये सच्चे साधु-गुरु हैं? हमने कहा कि हमारे पास एक फार्मूला है सच्चे साधु पहचानने का। महिला बड़ी प्रसन्न हुई और आप लोग चाहते भी क्या हैं? यही न कि हमें साधु की परीक्षा करनी आ जाये। हमने कहा- तुम्हें साधु-गुरु जरूर मिलेंगे। **जिस दिन आपकी आत्मा, सच्ची श्रावक बन जायेगी, उस दिन आपको सच्चे साधु, गुरु मिल जायेंगे।**

आजकल व्यक्ति या तो गुरुओं, साधुओं की अन्धभक्ति करता है जिससे उनके अवगुण भी गुण प्रतीत होते हैं या जहाँ हमारे चारित्र के प्रति साधु ध्यान नहीं दे- हमारी कमजोरी को प्रोत्साहन दे, वे हमारे गुरु हैं, ऐसे समय में यह **कहावत चरितार्थ होती है कि लोभी गुरु लालची चेला, होय नरक में ठेलं ठेला।** अतः इस बात का ध्यान भी हमें होना चाहिये। अथवा हमलोग

साधु, गुरुओं की इतनी उपेक्षा करते हैं कि उनमें गुण ही दिखाई नहीं देते हैं। अतः अपने को गुरु दर्शन में क्या करना है? यदि पुण्योदय से साधु संघ के सहित आ जायें तो विशेष भक्ति करना चाहिये। प्रवचन सुनना चाहिए। जरूरी नहीं, सब साधु प्रवचन दें। लेकिन उनके दर्शन एवं आहारदान आदि का लाभ भी जरूर लेना चाहिए, यथासमय वैयावृत्ति भी करनी चाहिए। साधु के लिये ज्ञानोपकरण-संयमोकरण के अलावा ऐसी कोई वस्तु नहीं देनी चाहिये जिससे साधु एवं धर्म का अपलाप हो। लेकिन यदि किसी साधु की चर्या पर तुम्हारी आस्था न झुके तो उनकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये।

जिन्हें आपने अपना धर्म गुरु माना है, वर्ष भर में एक बार सपरिवार या यथावसर उनके दर्शन-वन्दन करने के लिये अवश्य जाना चाहिए। उनसे कोई न कोई नियम, व्रत, संयम अवश्य लेना चाहिए, तभी वे हमारे धर्म गुरु बनेंगे और हर वर्ष कोई न कोई व्रत-नियम बढ़ाते रहना चाहिये। नियम-व्रतों में लगे दोषों की आलोचनापूर्वक प्रायश्चित लेना चाहिये, तभी हम सभी का कल्याण होगा।

इस प्रकार देव-शास्त्र-गुरु के दर्शन करके मंदिर जी से बाहर निकलते समय तीन बार आस्सही, आस्सही, आस्सही बोलना चाहिए। आस्सही बोलने का तात्पर्य है कि जिन देवों, क्षेत्रपालादि से हमने दर्शन-पूजन आदि के लिये स्थान लिया था, उन्हें सौंप दिया।

दर्शन करके बाहर निकलते समय देव-शास्त्र-गुरु को पीठ नहीं दिखानी चाहिये। ऐसा शास्त्रकारों का मत है -

"अग्रतो जिन देवस्य, स्तोत्र-मन्त्रार्चनादिकम्।
कुर्यान्न दर्शयेत् पृष्ठं, सम्मुखं द्वार लंघनम्।।"

अर्थात् जिन देव के आगे स्तोत्र-मंत्र और पूजन आदि करें परन्तु बाहर निकलते समय अपनी पीठ नहीं दिखायें। सम्मुख ही पिछले पैरों से चलकर द्वार का उलंघन करें।

आज बस इतना ही....

बोलो महावीर भगवान की......

आगम-सिद्धान्त

"जिन प्रतिमा के दर्शन से लाभः"

गरापाहारिणी मुद्रा गरुड़स्य यथा तथा।
जिनस्याऽप्येनसो हंत्री दुरितारातिं पातिनः ।।

जिस प्रकार गरुड़ मुद्रा (दर्शन मात्र से) सर्प-विष को नष्ट करने में समर्थ है उसी प्रकार जिन- मुद्रा पापों को नष्ट करने में पूर्णतः समर्थ है।

विघ्ना प्रणश्यन्ति भयं न जातु, न दुष्ट देवा परिलंघयन्ति।
अर्थान्यथेष्टाश्च सदा लभन्ते जिनोत्त-मानां परिकीर्तनेन।।

"छक्खण्डागम जीवट्ठाणं"

जिनेन्द्र देव के गुणों का कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं कभी भी भय नहीं होता, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

सुह-सुद्धपरिणामेहिं कम्मक्खाभावे-

शुभ और शुद्ध दोनों प्रकार के भाव कर्मक्षय के हेतु हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो कर्मों का क्षय नहीं बन सकेगा।

शुद्धोपयोगी की तरह शुभोपयोग वालों को भी धर्म परिणत आत्मा के रूप में स्वीकार किया है, अमृतचन्द्राचार्य ने भी-

यदा तु धर्म परिणतस्वभावेऽपि शुभोपयोग परिणत्या संगच्छते ।

इस पंक्ति में शुभोपयोग रूप परिणति को भी धर्म में ही सम्मिलित किया है अशुभोपयोग की तरह उसे अधर्म नहीं कहा।

सम्यग्दृष्टि के अनुराग तो धर्मात्मा पुरुषनि में धर्म की कथा में आयतन होय है।

-पण्डित सदासुखदास।।५७।।

जिनबिम्ब दर्शन सम्यक्त्व की प्राप्ति में कारण है ऐसा मूलागम सिद्धान्त "धवल ग्रन्थ" में निम्न प्रकार बताया है।

तीहि कारणेहि पढम-सम्मत्तमुप्पदेंति केई जाइस्सरा
केई सोदूण केई जिणबिंब दट्‌ठूण ।।३०।।

तीन कारणों से प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। कितने ही जाति स्मरण से, कितने धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही "जिनबिम्ब" के दर्शन करके।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन मात्र से ऐसे-ऐसे कर्मों का नाश होता है जिन कर्मों को अनेक तपों के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता ऐसे "निधत्ति-निकाचित" नाम के वज्र से अधिक कठोर कर्म भी गलकर नष्ट हो जाते हैं ऐसा सिद्धान्त-आगम में कहा है।

जिणबिंब दंसणेण णिधत्तंणिकाचिदस्य।
विमिच्छत्तदि कम्म कलावस्स खय दंसणादो।।
"धवल ग्रन्थ"

"सारंभई ण्हवणाइयहं, जे सावज्ज भवंति।
दंसणु तेहिं विणासियउ हत्थु ण कायउ भंति"
सावय धम्मदोहा २०११

जो अभिषेकादि से समारम्भों को सावद्य-दोषपूर्ण कहते हैं उन्होंने सम्यदर्शन का नाश कर दिया, इसमें कोई भ्रांति नहीं।

जो जीव जिनेन्द्र भगवान के दर्शन नहीं करते उनके लिये पद्मनंदी आचार्य ने "पद्मनन्दि पञ्चविंशति" ग्रन्थ में कहा है कि-

जिनेन्द्रं न पश्यंति ये पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिक् च गृहाश्रमम् ।।६/१५।।

जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते हैं, न पूजन करते हैं, न स्तुति ही करते हैं उनका जीवन निष्फल है उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

तपस्वि गुरु चैत्यानां पूजालोप प्रवर्तनम्।
अनाथ दीनकृपणाभिर्भिक्षादि प्रतिषेधनम्।।
७ तत्त्वार्थसार ४/५५

तपस्वी, गुरु और प्रतिमाओं की पूजा न करने की प्रवृत्ति चलना, अनाथ, दीन तथा कृपण मनुष्यों को भिक्षा आदि देने का निषेध करना ये सब अन्तराय कर्म, पाप आस्रव के निमित्त है।

आवश्यक चित्र

मुक्ताशुक्ति मुद्रा

वन्दना मुद्रा

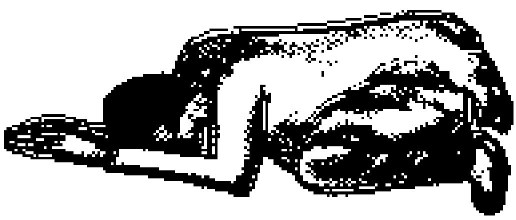

पंचांग प्रणाम

गवासन

कायोत्सर्ग मुद्रा

साष्टांग नमस्कार